श्री श्रियः श्रियै नमः
श्रीसीतारामौ–विजयेतेतराम्
श्रीमते रामानन्दाचार्य्याय नमः

अथ शिखरिणीमणिरत्नमाला

**पिता माता भ्राता गुरुरधिपतिर्बन्धुरपि वा धनं मित्रं विद्याभरणमसवोदैवतमपि ।
त्वमेवाशेषं मे रघुकुलमणे ! त्वामिह विना न जाने श्रीजाने शरणमिहमन्यत्त्रिभुवने ॥१॥**

हे श्रीरघुकुलमणी श्रीराम! इस संसारमें आपही एकमात्र हमारे माता पिता भ्राता गुरु स्वामी बन्धु धन मित्र विद्या अलङ्कार (विभूषण) प्राण तथा दैवत (शक्तिवल)जो कुछ भी है, केवल आपही हैं । हे श्रीसीतापते ! प्रभो आपके विना त्रिभुवनमें अन्य कोई भी हमारा शरणदाता नहीं है॥१॥

**अयोध्याधीशश्रीदयितदशकण्ठद्विपहरेहरे मारीचारे दशरथमनोनन्दनविभो !
इति क्रोशन्तं मां कलय कलया राघव ययाकयाचिद्दातन्व्या झटिति करुणायाः शिशिरया२।**

हे अयोध्यानाथ ! हे सीतापते ! हेश्रीपते, हे दशग्रीव रूपी हाथीको मारनेवाले सिंह, हे मारीचके निकन्दन करनेवाले, हे श्रीदशरथजीके मनको आनन्दित करनेवाले, हे व्यापक इस प्रकार आपके मङ्गलमयनामोंको निरन्तर पुकारनेवाले मुझ अनाथकी ओर उस करुणामयी दृष्टिसे देखनेकी कृपा करें जिस कृपा कोरके प्रकाशकिरणकी छटामात्रसे दुःखसे सन्तप्तजीवात्मा परमशीतल शान्ति सुखको प्राप्तकर धन्य धन्य हो जाते हैं ॥२॥

**न युक्तं त्यक्तुं श्रीरघुवरपुराणीं तवसकृन्नमद्रक्षादीक्षां निखिलनिगमान्तप्रकटिताम् ।
ममैकस्येदानीं कलुषमयमूर्तेरापेक्षते विचार्य्यैवं दीर्घं कुरुमयि कटाक्षाङ्कुरलवम् ॥३॥**

हे श्रीरघुनाथजी! सभी वेदवेदान्त प्रकाशित शरणमें आकर प्राणपात करनेवाले प्रपन्न की रक्षा करनेकी दीक्षा (व्रत) वाली यानी "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो तदाम्येतद्व्रतंमम" ऐसी लोकोत्तर उदात्त आपकीजो पुरातन प्रणाली है उसका त्याग करना आपके लिये कभी भी उचित नहीं है, सम्पूर्ण पापमय कलुष-मूर्ति मेरे जैसेके लिये भी आपको खूब विचार करके उस अपनी महान् प्रतिज्ञाका त्याग करना उचित नहीं अतः हे कृपानिधान ! मुझपर थोडीसी भी कृपा दृष्टि करें तो मैं कृतार्थ हो जाऊंगा।

**भजन्तं त्वत्पादाम्बुरुहयुगलं मामशरणं कटाक्षैः किं राम ! न सुखयसि कारुण्यशिशिरैः
सकृन्नमत्त्राणव्रतमवासितं नीतमथवा त्वया किं मद्वृत्तं त्वरितमनुचिन्त्यागतभिया॥४॥**

हे राम ! आपके युगलचरणारविन्दोंका भजन करनेवाले मुझ अशरणजीवको अपने शीतल करुणा कटाक्षोंसे सुखित क्यों नहीं करते हैं ? क्या एक वार भी शरणमें आकर जो त्राहि त्राहि पुकारता है उसकी रक्षा करनेके व्रतका आपने अब परित्याग कर दिया है ? अथवा हमारे भयंकर अपराधोंको देखसुनकर डरके मारे तुरन्त घबरागये हैं कि अरे ऐसा महान् पापी भी होता है, इसकी मैं रक्षा कैसे करूंगा ॥४॥

भ्रमन्तं मज्जन्तं भवजलनिधौ पाररहिते नितान्तं सीदन्तं विषयझषपादकवलितम् ।
भवन्तं क्रोशन्तं रघुकुलमणे हा इति कृपा रसं तं कांक्षंतं तव झटितिमामुद्धरहरे ! ॥५॥

अपार संसारसागरमें ऊब-डूब करते हुए भटकनेवाले अत्यन्त महान् कष्ट भोगनेवाले, विषयरूपी विकराल मगरमच्छने जिसका पाँव पकड लिया है ऐसा मैं हूं । हे रघुकुल शिरोमणे ! कृपाकरो, नाथ ! उबारो ऐसा करुण स्वरसे आपको पुकारनेवाले, केवल आपकी कृपारसका पान करनेकी चाहनावाले हूं अतः हे श्रीहरे ! आप मुझपर शीघ्र दया करके उद्धार करिये ॥५॥

अलं ते मत्पापस्मृतिजनितनिश्वासनिकरै रलं पश्चात्तापैर्नमदवन आवाह्यविरदम् ।
अलं साकेताधीश्वर मयि धनेर्ष्या प्रकटनै रलं कुर्वन्नेहि स्मितलवरुचा साधुवदनम् ॥६॥

हे प्रभो ! मेरे भयङ्कर पापोंका स्मरण कर करके अरेरेरे ऐसा घोरपापी कैसे शुद्ध होगा ? ऐसी चिन्ता करके वारबार निसासा लेनेकी आपको कोई आवश्यकता नहीं है हे श्रीसाकेताधीश्वर ! मेरी रक्षाके लिये पश्चात्ताप करते हुए अपने शरणागत रक्षक विरह को आवाहन करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है, तथा ऐसा पापी न जाने कहाँसे आगया ? ऐसा मेरे प्रति इर्षाभाव प्रकट करनेका भी कोई काम नहीं है, आपतो ये सब चिन्तायें त्याग करके मन्द-मन्द मुसकुराता, हंसता हुआ अपना सुन्दर मुखारविन्द मुझे दिखा दीजिये, बस उतने में ही मेरा सब काम बन जायगा, दीनानाथ ? ॥६॥

कठोरं पापानांगणमगणितं मा गणमयेमयीर्ष्यां मुञ्चत्वं मनसि धृतिमङ्गीकुरु दृढम् ।
बलादेवाकर्षन् मदवनचरामाशु करुणाम् प्रसादं वैदेहीरमण मयि दीने प्रकटय ॥७॥

हे नाथ मेरे महान् तथा कठोर पापोंके अगणित समूहोंकी गणना करनेका कष्ट आप मत करिये अर्थात् पापकी गणनाको छोडिये, प्रभो मेरे जैसे पापीके प्रति ईर्षा भाव का भी त्याग करके मनमें खूब दृढता पूर्वक धैर्य धारण करिये अनन्तर आप मेरी रक्षा करनेमें तुरन्त लगजानेवाली अपनी करुणाको बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षितकर हे श्रीवैदेहीरमणप्रभो ! मुझ दीन पर उसी करुणा दयाको कृपाकरके प्रकट करदीजिये बस, इतना ही तो काम है । इतनेसे ही मैं कृतार्थ हो जाऊंगा ॥७॥

अघानामुग्राणां जननभवनं भाविनममुम् जनं जानन् पूर्वं जलनिधितटे सर्वविदपि ।
नतानां सर्वेषामहमभयदोऽस्मि व्रतमिदम् ममेतित्वं धैर्यात् कथमुदितवान् राम गतभीः ॥८॥

बडे आश्चर्यकी बात है कि—'भयङ्कर महान् और घोर पापकर्म करनेवाला मैं भविष्यमें होनेवाला हूं " इस बातको भलीभांति जानते हुए भी समुद्रके किनारे सब कुछ जाननेवाले आपने स्वयं विभीषणजीके प्रति श्रीमुखसे "मेरे शरणमें आये हुए सभी शरणागतदीन जनोको निर्भय करदेनेका व्रत है ।" (अभयं सर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतं मम) यह आपने बडे धैर्यसे निर्भय होकर वानरी सभामें क्यों कहा था ? क्या मेरा स्मरण

भूलगये थे कि एक ऐसा पापी भी मेरेशरणमें आनेवाला है, इसलिये, उसको छोडकर अन्योंके लिये मेरा व्रत है, ऐसा श्रीमुखसे क्यों न कहा ? ॥८॥

मदन्यः पापीयान् त्रिजगति जनो नैव सुलभः सदिष्ट्या लब्धोऽहं तव सदनुकम्पैकविषयः।
इदानीमौदास्यं भजसि यदि हंसान्वयमणे ! गतिर्मेकावास्यात्कथय भवतः कीर्तिरपिका९॥

हे नाथ ! हमारे जैसा महान् पापी आपको तीनों भुवनमें कहीं भी मिलना महान् दुर्लभ है, यहतो आपको दैवयोगसे अपनी महती अनुकम्पा करनेके लिये एक नमूनेका पात्रके रूप मैं सौभाग्यसे मिल गया। परन्तु हे सूर्यवंश शिरोमणे ! यदि इस समय आप मेरे प्रति उदासीन होकर मुझपर कृपा नहीं करते हैं तब फिर मेरी क्या गति होगीं ? आपकी उज्वल कीर्तिकी क्या दशा होगी ? यह तो अब आप ही भलीभांति विचार कीजिये ॥९॥

क्व मे बुद्धिर्गच्छेत् रघुवर न जाने परमितः तमेतं मात्रातुं तव समय एषोऽञ्जलिरिमम्।
परं व्याजीकृत्य त्वरितमघजालान्यगणयन् प्रसीद त्रैलोक्ये प्रतिभटमलभ्यं भज यशः१०।

हे रघुनादजी ! यदि आप मेरी रक्षा न करेंगे तो न जाने मेरी बुद्धि कहाँ चली जाय और क्या क्या कर बैटे, ये आगेकी बात मै कुछ भी नहीं जानता हूं, इसलिये मेरी रक्षा करनेका आपको बहुत ही सुन्दर समय मिला है, इससमय मेरा बहाना करके मेरे घोरपापोंका विचार न करके यदि मुझपर प्रसन्न हो जायं तो तीन लोकमें जिसका जोडा न मिले ऐसे मुझसा पापीका उद्धार करके अपने निर्मल यशका त्रिभुवनमें विस्तार करना आप कदापि न चूकिये ॥१०॥

गजेन्द्रः प्रह्लादो दशमुखसगर्भ्यश्च विजय स्तथैवान्ये त्राता इति च भगवता ये सुकृतिनः।
किमाश्चर्यं तत्र त्रिभुवनपते ! मां रघुपते? दुरात्मानं रक्षन् प्रकटयकृपामद्भुततमाम्११

आपने गजेन्द्रको, प्रह्लादको तथा रावणके भाई विभीषणको और भी अन्यान्य पुण्यात्मा भक्त व प्रेमियोकी रक्षाकी तो इसमें क्या आश्चर्य है ? परन्तु हे त्रिभुवनपति हे रघुपति ? मेरे जैसे दुरात्मा पापीके ऊपर अपनी उस अनूपम अद्भुत कृपाको प्रकट करिये, तब आपकी महिमाका सम्पूर्ण प्रकाश होगा ॥११॥

मदंहः सन्दोहं न लिखितुमलं लेखकशतैः शतैः कल्पानां मां दमयितुमलं नान्तकशतम्।
भवेयुर्मे मञ्चाः किशलयमयाः सर्वनरकाः कटाक्षात्ते नान्या रघुतनय मन्निष्कृतिरतः१२

मेरे पापोंके अपरम्पार समूहोको चित्रगुप्त जैसे सैकडों लेखक लिखते लिखते थक जायेंगे परन्तु पार नहीं पायेंगे। तथा सैकडों कल्पो तक सैंकडोयम राज दण्ड देते देते थक जायेंगे तो भी मेरे पापोंकी शुद्धि नहीं हो सकेगी। परन्तु हे रघुकुल बिभूषण श्रीराम ? यदि आपकी कृपा कटाक्षका किञ्चिन्मात्र भी प्रसाद हमको मिल जाय तो भयङ्कर नरककी जलती हुई अग्नि भी मेरे लिए शीतल पुष्पोंकी शैय्या जैसे सुखप्रद बन

जायेंगे, हे नाथ ! आपके कृपाकटाक्षसे अतिरिक्त मेरे उद्धारका दूसरा कोई मार्ग संसारमें है ही नहीं ॥१२॥

न गायत्री जप्ता विधिरपि च संध्या न रचिता नवातृप्तिनीता सुरवरपितृणां समुदया।
गुरुणां शुश्रूषावहितमनसा जातु न कृताकुतः काकुत्स्थ त्वच्चरणकमलाराधनकथा १३।

प्रभो ! न तो मैंने गायत्रीका जप या पुरश्चरण ही किया है तथा न विधिवत् संध्यावन्दन व आराधना ही किया है, उसी प्रकार (मैंने न तो देवताओंको ऋषियोंको एवं पितरौंको यज्ञ, दान, स्वाध्याय तथा तर्पण आदिसे तृप्त ही किया है तव हे काकुत्स्थ ! हे ! रघुनाथजी ! आपके श्रीचरणकमलोंके आराधनकी तो बात ही क्या पूछना ! १३॥

न दत्तं पात्रेभ्यो किमपिखरहन्तस्तवमुदेनजप्तं त्वन्नामक्षणमपि कदाचित्स्थिरधिया ।
भवद्दासानां वा पदनलिन सेवापि न कृतामया मोहावेशाद् भव विपिनमेवैवमटता १४।

हे नाथ ! आपकी प्रसन्नताके लिये मैंने कभी सुपात्रोंको दान नहीं दिया है । कभी एकान्तचित्तसे बैटकर आपके मङ्गलमय नामका भी जप नहीं किया है । प्रभो ! क्या कहूं ! जिसप्रकार मोहावेश में मस्त होकर संसाररूपी घोर जंगलमें प्रेमपूर्वक भटकता हूं उस प्रकार प्रेमपूर्वक आपके चरणानुरागी सेवकोंके पादारविन्दोंकी सेवा मन लगाकर कभी स्वप्नमें भी मैंने नहीं की है ॥१४॥

किमन्यद्वा ब्रूयां मदकृतमघं नास्ति भुवनेष्विदानीमप्येषो न विरमति पापाद्धतमतिः ।
अतः सर्वेश? त्वं मयि रघुपते यद्यकरुणोममावसो भूयान्निरयचयमाचन्द्रमिहिरम् १५

हे नाथ मैं और क्या कहूं मेरे जैसा पापकरनेवाला तो त्रिभुवन में भी कोई नहीं है, इतना पाप करते हुए भी आश्चार्य तो यह है कि पाप करते करते मेरी बुद्धि ऐसी नष्ट हो गई है कि अभी भी पापकर्म छोडना नहीं चाहती है । यह ऐसा नीचं प्रवृत्ति वाला है तो भी पतीतोद्धारक श्रीराम इस पर यदि हे सर्वेश्वर प्रभु श्रीरघुनानजी यदि आपकी करुणा मयी कृपा इस दीनपर नहीं हुई तो जब तक संसारमें सूर्यचन्द्र रहेंगे । तब तक नाना प्रकारके घोर नरकोंमें मुझे निवास करना पडेगा ॥१५॥

प्रलापैरेतैः किं बहुभिरिह मे निश्चितमिदं श्रृणुष्वैकं सत्यं शुभकरकटाक्षेण भवता ।
गृहीतो नाहं चेद्रघुकुलपते ? नूनमसृजेद्विधाता मां शंके नरकनिकरैकोत्सवकृते ॥१६॥

हे श्रीराघवेन्द्र प्रभो अब विशेष प्रलाप केरनेसे क्या लाभ ? मैंने तो अब जो निश्चय कर लिया है उसे ध्यानपूर्वक सुनिय । यह परम सत्य तथ्य यह है कि-यदि अपनी परम शुभकृपा कटाक्षद्वारा आपने मुझे ग्रहण नहीं किया यानी आपसे मेरा उद्धार नहीं हुआ तो हे रघुपते विधादा भी मेरे जन्मके विधान करने में शंका करेगा कि-यह तो भयङ्कर नरकोंमें निवास करनेमें ही खुशी मनानेवाला मेरे हाथमें कहाँसे आगया ॥१६॥

**क्षणाल्लोकाँन्स्त्रष्टुं प्रभवति भवान् दग्धुमपिवा कृतंमोभुक्तं यदि भुवि न नश्येद्ध्रुवमिति
रघुश्रेष्ठस्वामिन् जनमिममहो मोहयसि किं-कमोक्षे त्वां त्वं वा त्रिभुवनमयो यास्यासि कुत**

हे नाथ महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने भी आपके लिये "सर्वान्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् स चराचरान् । पुनरेव तथा स्त्रष्टुं शक्तो रामोमहा यशाः" कहा है तो आप क्षणमात्रमें सभी लोकोंका निर्माण कर सकते हैं तथा क्षणमात्रमें भस्म भी कर सकते हैं । तब किये कर्मोंका भोग किये विना नष्ट नहीं होता है तो यह सृष्टिके निर्माण तथा विनाशकी क्रिया कैसे हो सकती है ? हे रघुकुलशिरोमणी हे स्वामी ऐसी ऐसी बातें कहकर आप अपने जनको मोहमें क्यों डालते हैं, आपतो कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ हैं । फिर मैं आपका त्याग कैसे कर सकता हूं और आप भी जब त्रिभुवनमय हैं तब मुझे छोडकर कहीं कैसे जा सकते हैं । अर्थात् किसी प्रकारसे मेरा स्वीकार तो आपको करना ही पडेगा ॥१७॥

**स्व संकल्पायत्तस्त्रिजगदुदयोल्लासशमनः- समस्तैकाधारस्त्वमसि सकलाम्नायपठितः ।
कियत्ते मत् त्राणं दिनमणिकुलैकाभरण ? किं बलीयान् वा तस्मात्त्वदपि मम दुष्कर्ममहिमा**

समस्त त्रिभुवनका उदय-पालन-प्रलयादि सम्पूर्ण कार्योंके आधार एकमात्र आप ही हैं ऐसा वेदोंने वर्णन किया है, तब श्रीरघुवंशविभूषण राम? मेरा उद्धार कर देना, मेरी रक्षा करना आपके लिये क्या कठिन है ? परन्तु इतना वारंवार त्राहिमां त्राहिमां करने पर कृपा नहीं करते हैं । इसका क्या कारण है ? क्या आपकी अनुकम्पाके बलसे भी मेरे पापोंकी महिमा बलवती है ? ॥१८॥

**ददौ प्राणान् ग्राव्णे तवचणपंकेरुहरजः कृतः सेतुः सिन्धावहह भवता ब्राह्मणशिशोः ।
मृतस्यासीस्त्वं श्रीरमण नवसंजीवनसुधा न मामेकं त्रातुं कथमिह भवान् कोबलमलम् १९**

आपके चरणकमलकी धूलीने पथ्थरकी प्रतिमा अहल्याको प्राणवती बनाई, आपने अगाध अपार समुद्रपर सेतु पुलबांधकर आश्चर्यकर दिखाया, मरे हुए ब्राह्मणकुमारको अपनी संजीवनी सुधासे पुनः जीवन प्रदान किये प्रभो ! ये सब आश्चर्यमयी लीलायें तो आप कौतुक रूपमें ही कर सकते हैं, केवल मेरी रक्षा करनेका ही आपमें सामर्थ्य नहीं हैं, तब फिर आपकी महिमा ही क्या रही ? ॥१९॥

**शिलायांप्राणस्थापनन उदधौ सेतुकरणात् सुरक्षाभृत्सारप्रमथपतिकोदण्डदलनात् ।
सभीके तत्ताद्दक् दशमुखमुखारातिदलनात् तवायोध्यास्वामिन् मदवनमिदं किं गुरुतरम् २०।**

हे स्वामिन ! मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं आप ही खूब विचारकर उत्तर दीजिये । प्रभो पत्थरमें प्राणस्थापन करनेसे, समुद्रपर सेतु बांधनेसे और सुरक्षाके धारण करनेमें सार-रूप शंकरके धनुषको विचलितकर देनेसे तथा सभीको रुलानेवाले रावणके भयसे भयभीत विभीषणकी रक्षा करनेके लिये दशानन जैसे महाभयङ्कर शत्रुका दलन करनेसे भी अयोध्या-नाथ प्रभु श्रीराम ? क्या मेरा रक्षण करना आपको भारी लगरहा है ? ॥२०॥

ध्रुवं दुखोदर्काद्विषयसुखसेवा निरतमा-भवत्येदं साक्षादपि हतमनो मुह्यति मुहुः ।
भवन्मायायैवं व्रतबलवती नर्तयति माम् खरारे सा हेला बत भवति हाला मम पुनः २१

प्रभो ! भयङ्कर दुःखों को सहन कर लेना अच्छा है, परन्तु विषय सुख भोग करना अच्छा नहीं है इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी मेरा मन पुनः पुनः विषय विलास में ही निमग्न रहता है, इसका कारण केवल आपकी महान् बलवती माया ही है, जो इस प्रकार वारंवार मुझे नचाती रहती है, प्रभो ! आपकी यह लीला आपके लिये खेल है कौतुक है परन्तु मेरे लिये दुर्धर विषका काम कर रही है, प्रभो ! कृपा करें अब जैसे भी हो उस आपकी दैवी माया के चक्कर से दास को छुडा लीजिये ॥२१॥

भ्रमन्तः श्रूयन्ते घनविषयगम्भीरजलधौ यया यादोरूपा विधिशिवमुखा मोहित धियः २।
अहं तां त्वन्मायां कथमिव तरिष्यामि कृपया-विना ते मूढात्मा नलिनदलशंकाशनयन।२

यदि आप कहें कि तब तुम उस माया के चक्कर से निकल क्यों नहीं जाता है, तो दास की प्रार्थना है कि आपकी इस प्रबलतम माया के गम्भीर अपार समुद्र में जलचरों के समान मोहितमति होकर ब्रह्मा, शिवादिक जैसे देवाधिदेव भी विषय विमूढ होकर चक्कर काट रहे हैं, ऐसा महापुरुषों के मुख से सुना जाता है. तब मेरे जैसा पामर जीव आपकी उस दैवी माया के पञ्जे से हे कमलदललोचन ! आपकी कोमल कृपा कटाक्ष के बिना कैसे तर सकता हूं ? ॥२२

हठादाकृष्यैवेन्द्रियकुलमिदं मानसमनारतं गाहं गाहं विषयगहनानिश्ववदहो ।
भ्रमत्येवं स्वैरं प्रबलतरमोहोत्कटतया-करिष्ये किं वाहं दशरथमहीपालतनय ! २३॥

हे श्रीदशरथ महीपालतनय श्रीदशरथराजकुमार ! प्रभो ? ये इन्द्रियों का समूह मेरे मनको जबरदस्ती हठ पूर्वक अपनी ओर खींचकर विषय विलास के गहनवन में गहरे घनघोर झाडियोंमें लेजाकर कुत्ते की तरह महा प्रबल मोहमाया के वश में भटकाता रहता है, प्रभो ! मैं क्या करुं? मेरा तो कुछ भी वश नहीं चलता है ॥२३॥

दुरालापान् वक्तुं स्फुरति रसना नाम नहि ते असारेसंसारे शुभममृतदानैकनिपुणम् ।
श्रुती दुष्टोदन्तश्रवणचपले तावककथा-सुधासारैर्हेतु प्रचुरभवतापं न भवतः ॥२४॥

हे नाथ ! क्या कहूं ये इन्द्रियाँ मेरी कैसी दुर्दशा कर रहीं है वह मैं आपसे निवेदन करता हूं। ये मेरी रसना जीभ खराब खराब बातें तो खूब करतीं हैं परन्तु असार संसार सागर के भयङ्कर रोग को छुडाने वाले दिव्य अमृत स्वरूप दान देने में परम प्रवीण आपके नामका कीर्तन नहीं करती है । ये कान भी आपके दिव्य मङ्गलमय गुणानुवाद आपकी कथा नहीं सुनते हैं जो भवताप का कष्ट कभी न भोगना पडे ऐसे अमृत के भी अमृतसार स्वरूप आपकी कथा सुनना छोडकर रातदिन दुष्टजनों की ही बातें सुना करते हैं ॥२४॥

दृशोर्द्वन्दं दुष्टं विषयमपि द्रष्टुं मृगयते—नमूर्तिं भद्रान्ते रुचिरशरचापाङ्कितकराम् ।
वपुस्तावच्छीघ्रं परिचलति दुष्कर्म करणे न ते कैङ्कर्य्येहा रघुरमण? मज्जामि निरये २५॥

हे श्रीरघुनाथजी! मेरी और भी दुर्दशा सुनिये! ये मेरी आँखे दुष्ट विषयवर्धन करनेवाले दृश्यों को तो वार वार देखना चाहती है परन्तु धनुषवाण दिव्य आयुध धारण किये हुए आपकी परमसुन्दर कल्याणमयी मूर्तिका दर्शन करना नहीं चाहती, और मेरा यह शरीर भी भयङ्कर दुष्कर्म करने में तो तुरन्त लगजाता है, परन्तु आपके कैंकर्य सेवाशुश्रूषाका दिव्यसुख लेना नहीं चाहता, प्रभो! मैं तो इस प्रकार सब तरह से नरक में ही डूब रहा हूं ॥२५॥

पतित्वा कामाग्नौ ज्वलतिमनएतच्छलभवद्विधत्तेत्वद्ध्यानामृतसरसिलीलां न झषवत् ।
स सीतस्यैवं ते भवति परिहासाय महते-ममेदंत्वन्माया मयुमहिममक्षस्यनटनम् ॥२६॥

मेरा यह मन कामाग्नि में गिरकर कीडा फतींगा के समान जल रहा है परन्तु आपके स्वरूप सौन्दर्य के ध्यानामृत सरोवर में मछली की भाँति लीलाविहार नहीं करता है प्रभो ! आपकी माया के वश में होकर मेरा यह नाचनाचना यदि सच पूछिये तो श्रीसीताजी के सहित आप दोनों का महान् परिहास करानेवाला ही होगा। इसलिये भी आप मेरी रक्षा करके अपने सुयश की भी रक्षा कर लीजिये ॥२६॥

मनः कामक्रोधाद्यरिगणपराभूतमभवद् हृषीकालीबद्धा विषयमयकारानिवसने ।
अहं मग्नोगाधप्रतिभयभवाधांधुकुहरे ? हरे सीतानाथ ? त्रिजगदधिनाथावकृपया ।२६।

हे हरे ! मेरा मन कामक्रोधादिक शत्रुओं से पराभूत होकर इन्द्रियों के जाल में बँधकर विषय भोगरूपी कारागार (जहल) में निवास कर रहा है। अतः प्रभो ! मैं अगाध भयंकर अन्धकार के भय से भयभीत होकर भटक रहा हूं। हे सीतानाथ ! हे त्रिभुवन के स्वामी श्रीराम ! यह आपकी कृपा न होने के कारण ही मेरी दुर्दशा हो रही है अतः आपको कृपा अवश्य करनी चाहिये ॥२७॥

भवल्लीलोद्यानं हृदयमभितो दह्यत इदं ज्वलत्कामक्रोधात्मकदवशिखज्वालपटलैः ।
सुधाधारावारोस्तवनयनपद्माञ्चलपलात् दयालोकाकारैः सभय समयेऽस्मिन्रघुपते २८

हे दया निधान ! मेरा यह हृदय आपकी लीला विहार की सुन्दर बगीचा फुलवारी है जो चारों ओर से काम क्रोधरूपी अग्नि की लपटों से धाँय धाँय जल रही है। हे रघुनाथ जी ! आपकी दयारूपी अमृतधारा की बरसा बरसाकर अपनी कृपा कटाक्ष द्वारा उसको शान्त शीतल करने का यही सुन्दर अवसर है। अतः हे नाथ ! अपनी दया दृष्टि की सुधाधार बरसो कर अब मेरे जलते हुए हृदय को तुरन्त शान्त कर देने की कृपा करें ॥२८॥

भवत्केलीयोग्याहृदयनलिनी क्षुभ्यत इयं प्रकामं कामाद्याह्वयधनमदोन्मत्तकलभैः ।
स्वसानिध्यादेतान् प्रसभमभिनिर्धूयसहसा तवेदं स्पष्टार्थं घटय रघुसिंह?त्वमधुना ॥२९॥

हे प्रभो ! काम क्रोधादिक हाथियों द्वारा आपकी केली क्रीडा करने योग्य मेरी यह हृदय रूपी कमलिनी नष्टभ्रष्ट की जा रही है, इस समय यदि आपकी सानिध्यता उपस्थिति हो जाय तो रघुकुलसिंह यह आपका नाम सार्थक यानी स्पष्ट हो जायगा अतः इस समय सहसो यहां पधारकर तुरन्त इन सबको भगा देनेकी कृपा करके अपने नाम को सफलकर दिखाइये ॥२९॥

मदीया प्राचीना परिगणितकर्मौभवजनितां भवद्ज्ञानानन्दात्मकविमलमूर्ते जवनिकाम् ।
शरीराक्षार्थत्वेनच परिणतान्तां गुणमयीं'त्वदीयां माया मां रघुकुलपते तारय विभो ॥३०

हे रघुकुलपते ! श्रीराघवेन्द्र प्रभो ! यह आपकी माया जो मेरे किये हुए प्राचीन पुरातन कर्मो के फल भोग उत्पन्न हुई है ऐसी मानी नाती है। जो आपके निर्मल ज्ञान सच्चिदानन्दस्वरूप को छिपातेवाली पडदा सरीखी कही जाती है। तथा जो शरीर की रक्षा के व्याज के बहाने से त्रिगुणमयी बनकर मुझे संसार में डूबा रही है, हे सर्वव्यापक प्रभो ! कृपा करके उस अपनी माया से मेरा उद्धार कर दीजिये ॥३०॥

कदर्य्यः कामात्मा कठिनहृदयकातरमतिः, मदासत्यासूयांकपटदुरहङ्कारजनिभूः ।
शठः क्रूरः पापी भवजलधिमेतं कटुरहम्–कथं तीर्त्वा प्राप्स्ये तवचरणसेवां रघुपते ॥३१

हे रघुपते ! महान् लोभी कंजूस, कामात्मा, कपटी और अहंकारी मद–ईर्षा–कपट–अहङ्कार तथा महान् क्रूर हृदय वाला इतना ही नहीं दुष्टबुद्धि शठ पापी सभी प्रकार के पापों की जन्मभूमि हूं ऐसा मैं भवसागर में पडा हूं तो मेरा जैसा कटुस्वभाववाला इस दुस्तर संसारसागर को तर कर आपके श्रीचरणकमलों की सेवा कैसे प्राप्त कर सकूंगा ? ॥३१॥

मनः सूत्रंगृह्णन् भवसदसि तुल्य प्रतिमया–चिरादेवं मायामयजवनिकान्तिर्हततनुः ।
भवान् लीलाशीलो रघुकुलपते नाटयतिमाम्-कदा वा नाट्यान्ते मम तव पदाब्जाभ्युपगमः।

हे लीलधर नटवर ! संसाररूपी इस नाटक शाला में अपने ही समान आपकीरुचि रखनेवाली मायादेवी अपने नये नये पडदे लगाकर मेरे मन की डोरी पकडकर मुझे अपने वश में रखकर नाना प्रकार के नाचें नचाती है, परन्तु आप कहाँ छिपकर ये तमाशा लगा रहे हैं कुछ पता नहीं नटाधीश हे प्रभो ! अबतो इस नाटक में नाचते नाचते मैं थक गया हूं न जाने कब आप का यह नाटक समाप्त होगा और कब मुझे आपके श्रीचरणार विन्दोंकी प्राप्ति होगी ?॥३२॥

अरक्षन् रक्षन् वा दशवदनवैरिन्!मम गतिःतवैवान्यान् देवान्हृदि न गणये जातु चिदपि।
असौख्यं सौख्यं वा मम भवतु सर्वं त्वनुभवाम्यकीर्तिः कीर्तिर्वा तव खलु न तस्मिन् वद प्रभो

आप रक्षा करें अथवा न करें हे दशमुखरावण के वैरी ! मेरी तो एक मात्र आप ही गति हैं, दूसरे आपके विना किसी भी देवताओं को मैं अपने हृदय में कुछ भी नहीं गिनता हूं। इसलिये मुझे चाहे सुख हो या दुख हो, जो कुछ भी भले बुरे अनुभव होना हो होते रहे, मैं धैर्यपूर्वक अनुभव करता रहूंगा, परन्तु एक वात आपही खूब सोच विचार कर कहिये कि इससे आपकी अपकीर्ति होती है कि सुकीर्ति ? यह भी तो आपको ही विचारना है ? ॥३३॥

मुहुःक्रोशन् श्रान्तो दशमुखरिपो त्वामहमणुप्रमाण्यं कारुण्यं विलपति मयि त्वं न कुरुषे।
अपारो घोरोऽयं पुनरहहसंसारजलधिर्विमूढः किंकुर्यां विषय निचयाऽक्रन्दितमतिः ३४

हे दशानन रावण के दुश्मन श्रीराम ! मैं इस प्रकार रोते रोते वारंवार दीनतापूर्वक चिल्लाते चिल्लाते थक गया हूं परन्तु आपको मुझपर अभी तक किंचित् मात्र भी दया नहीं आती है। एक तरफ यह अपार घोर संसार समुद्र और एक तरफ आपकी दयाका एकदम अभाव इस वीच में सर्वप्रकार से दीनहींन विमूढ विषयों के वश में पडा हुआ भ्रष्ट बुद्धिवाला मैं अनाथ कर ही क्या सकता हूं ? ॥३४॥

ज्वलज् ज्वालामाले प्रविशतु जनोऽयं किमनले,गिरेः श्रृंगात्तुङ्गात्पततुकिमधश्चूर्णिततनुः
शिरो वै तद्भित्वा किमिह शिलया स्रंजि करतु क्षमाकन्याप्राणेश्वर न कुरुषे हन्त करुणाम्
समूलां किं वोत्पाटयतु जन एषोऽद्य रसनां,शिलां कण्ठे बध्वा पततु किमगाधे जलनिधौ।
मुहुःसोरस्ताडं तव किमथवा क्रन्दतु पुरोन मे शान्तिः सीतारमण तव कारुण्यविलयात्

हे अत्यन्त क्षमाशील धरणी कुमारी श्रीजानकीजी के प्राणेश्वर प्रभो ! इतना रोने चिल्लाने पर भी जब आप कृपा नहीं करते हैं तो क्या यह दुखियारा प्राणी धधकती हुई अग्नि कीं ज्वालाओं में प्रवेश कर जल जाँय ? अथवा पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढकर नीचे शिलाओं पर गिरकर शरीर को चूरमचूर कर दे, अथवा पथ्थरों से टकरा टकरा कर शिर के टुकडे टुकडे करदे, आखिर क्या करें ? क्या अपनी जीभ को जड से खींचकर मर जाय अथवा एक भारी पत्थर गले में बांधकर अगाध समुद्र में गिरकर डूब जाय, अथवा वारंवार छाती कूटकूट कर आपके सम्मुख विह्वल होकर रोया करे। हे श्रीसीताराम प्रभो ! मैं सत्य सत्य कहता हूं आपकी कृपा विना मुझे किसी प्रकार और कहीं भी किसी के द्वारा शान्ति नहीं मिल सकती है ॥३५-३६॥

न जेतुं शक्नोमीन्द्रियसमुदयंनापिमनसा,स्थिरेण त्वां ध्यातुं मरकतमणीं मञ्जुलतनुम्।
न कर्मानुष्ठातुं विधिवदपि भास्वत् कुलमणे भवत्पादाम्भोजं शरणमभजं केवलमहम् ॥३७॥

हे सूर्यवंशशिरोमणे ! मैं अपनी इन्द्रियों को जीतकर वश में नहीं कर सकता हूं। तथा न तो स्थिर एकाग्र चित्त से आपके नीलमणी के समान मधुर मनोहर मञ्जुल छविका ध्यान ही लगा सकता हूं, उसी प्रकार अनेकों प्रकार के धर्मकर्मों के अनुष्ठानों को भी मैं विधिपूर्वक करने में समर्थ नहीं हूं, मैं तो आपके श्रीचरणकमलों का केवल भजन ही कर लेता हूं यही बहुत है ॥३७

न धर्मे नोकामे न च धनचये नैव जातोपतित्वे कांक्षामे भवतु भवितव्यं विधिवशात्।
तथापि श्रीराम प्रतिजननमङ्गीकृत कृपः, तव श्रीपादाब्जे दृढपरमभक्तिं वितर मे ॥३८

हे प्रभो ! मैं बडा भारी धर्मात्मा वनजाऊ, मैं संसार का सम्पूर्ण काम सुख भोग प्राप्त क लूं मैं महान् धनाढ्य होजऊं अथवा सम्पूर्ण पृथिवी का एक मात्र स्वतंत्र सम्राट् वन जाऊं इन सब की मुझे कुछ भी आकांक्षा नहीं है ये तो प्रारब्ध वश जो कुछ होना होगा होता रहेगा परन्तु मैं तो दीनों पर अहैतुकी कृपा करने की व्रत को स्वीकार किये सर्वसमर्थ हे श्रीराम ? इतना ही चाहता हूं कि आप कृपा कर मेरा निवेदन स्वीकार करके मेरे कर्म-प्रारब्धानुसार जिनजिनयोनियों में मुझे जाना पडे उन उन योनि यानी जन्म में आप अपने श्रीचरणारविन्दों की परमदृढ परा-भक्ति प्रदान कर मुझे कृतार्थ कर दें ॥३८॥

पशुत्वं पक्षित्वं तृणतरुलताश्मत्वमपिवा, कृमित्वं वा रक्षोनरसुरपिशाचत्वमथवा ।
यदि स्याद्यद्यन्मे जननमपि सर्वत्र भवतु त्वदीये पादाब्जे रघुकुलपते भक्तिरचला ।३९॥

हे श्रीरघुवंश विभूषण ! मुझे पशु-पक्षी घास वृक्ष-लता पत्ता अथवा प्रारब्धवश पत्थर कंकड जो कुछ बनना पडे कोई चिन्ता नहीं है । कृमी-कीट-राक्षस-मनुष्य-देव-दैत्य असुर अथवा पिशाच इत्यादि जो जो जन्म लेना पडे जो जो शरीर धारण करना पडे कर लूङ्गा, इस लिये तो आपसे कुछ भी कहना नहीं है, कहना तो केवल इतना ही है कि जहां जहां मेरा जन्म हो जो जो शरीर धारण करना पडे करलूं परन्तु हे नाथ ! उन उन स्थानों में आपके श्रीचरणकमलोंका प्रेम, आपके श्रीचरणों की अविचल भक्ति मेरे हृदय में अखण्ड बनी रहे यही वारंवार प्रार्थना है॥३९॥

पृथिव्यां पाताले नभसि नरकेऽन्धे तमसिवा-वसामि स्वामिन् श्रीरघुरमणकर्मानुगुणतः ।
तदास्तां मत्प्राणोत्क्रमणसमये त्वत्करुणया, त्वदङ्घ्यूब्जद्वन्दस्मरणमनिरोधं भवतु मे ४०

हे रघुकुल रमण श्रीराम ! मैं अपने कर्मानुसार पृथिवी-में पाताल-में आकाश-में नरक-में घोर अन्धकार में जहाँ कहीं भी वास करू पर करुणामूर्ति प्रभो वहां मेरे प्राणान्त के समय आपके युगल श्रीचरण कमलों का निरन्तर बाधा रहित स्मरण चिन्तन होता रहे, एक क्षण भी आपका विस्मरण न होने पावे ऐसी कृपा करिये ॥४०॥

कदा वा त्वां ध्यायन् नवजलधरश्यामलतनुम् शरद्राकाचन्द्रप्रतिभटमुखाम्भोरुहरुचिम् ।
वसानं कल्याणम्बरमचलविद्युच्छतनिभं विमोक्षेऽहं देहं भुवनमुपरामेत्वनुलयम् ।४१॥

हे प्रभो ! आपके नवीन मेघ के समान श्याम सुन्दर शरीर का ध्यान करते हुए शरद्पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी लज्जित करनेवाले मनोहर मुखारविन्द की दिव्य छटा का दर्शन करते हुए सैकडों विजलियों का तेज जिसमें स्थिर होकर बैठा है ऐसे पीताम्बर को धारण किये हुये सर्वकल्याण स्वरूप आपकी मनमोहनमूर्ति का दर्शन करते हुए मेरा यह शरीर मैं कब छोडूंगा जिससे फिर दूसरे किसी लोक में न जाकर आपके ही दिव्यधाम साकेत में मेरा लय यानी नित्य निवासहो क्योंकि आपके विषय में आचार्य श्रीका कथन है कि "सत्यसन्धः प्रतिश्रुत्य प्रपन्नायाभयं स्वयम् । निवर्तयेद्भये नैनं श्रीरामः श्रितवत्सलः" तो आप हमें भयजनक संसार में निवर्तित न करें सब प्रकार से निर्भय श्रीचरणों में ही आश्रय दें ॥४१॥

असूनां चेतेषां गमनसमये राघव वदन् मुहुर्मा भैरित्येष्यसि सरभसं मे परिसरम् ।
धनुर्घण्टाघोषः श्रवणपरिभूतान्तकभटाः किरीटी क्वचित्त्वं कटिघटितजाम्बूनदपटः॥४२॥

प्रस्तुत स्तोत्र रत्नप्रणेता आचार्यजी सर्वेश्वर श्रीरामजी से अपने भावको व्यक्त करते हैं या भक्त भावना करता है कि मेरे इन प्राणों के जाते समय मैं श्रीराघव श्रीराम ऐसा वारंवार बोलता रहूंगा उस समय आप डरमत, मतडर मैं आगया इस प्रकार अभयवाणी बोलते हुए तुरन्त मेरे पास पहुँच जायेंगे । उस समय आपके शारंग धनुषका टङ्कार तथा रथका घंटानाद सुनकर यमराज के भट डरके मारे भाग जायेंगे और मैं किरीट तथा कुण्डल से सुशोभित कमर में पीताम्बर धारण किये हुए आपके मनोहर स्वरूप का दर्शन कर परमानन्द प्राप्त करता रहूं। ॥४२॥

स्मरेयं क्वचित्त्वां दृढमहमिहेदं तनुलये जपेयं क्वचित्ते कुशलवगुरोर्नाम शुभधीः ।
भजेयं क्वचित्तो जगदघपुनर्जन्मरहितो भवेयं क्वचित्त्वत्पदकमलकैङ्कर्यशरणः ॥४३॥

आचार्य पुनः अपनी भावना को स्पष्ट करते हैं या भक्त पुनः भावना करता है कि–प्रभो! मेरे शरीर का भय होता होगा क्या उस समय मैं कभी दृढतापूर्वक आपका ही स्मरण करता रहूंगा? क्या उस समय हे कुशलव के पिताजी! मैं आपका मङ्गलमय सुभनाम जपता रहूगा? क्या कभी आपका भजन करते हुए संसार के पुन पुनः जन्म मरण से मैं रहित हो जाऊगा? प्रभो! क्या कभी ऐसा भी समय आयगा कि मैं आपके श्रीचरणकमलों के कैङ्कर्य सेवा का लाभ आपका शरणागत होकर प्राप्त करूंगा ॥४३॥

श्वसन्नास्ते क्रोधात्स्फुरडशनदंष्ट्राधरपुटः कठोरः कीनाशः स्मृतमदघकोटिर्यमभटाः ।
प्रतिक्षन्ते कालं धृतविविधघोरप्रहरणाः मया धन्यस्तेऽहं तव पदसरोजे रघुपते ॥४४॥

मेरे भयङ्कर पापों को स्मरण कर यमराजा के करोडों कठोर क्रूर भट क्रोध के मारे थर थर कांपते हुए लम्बे लम्बे श्वास लेते हुऐ, दांत कड कडाते हुए, ओठों को फडपडाते हुए, अनेकों प्रकार के घोर शस्त्रास्त्र लेकर मेरे मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु हे श्रीरघुनाथजी! मैं तो आपके श्रीचरणकमलों का आश्रय लेकर धन्य हो गया हूं ॥४४॥

मणिर्जीवश्चिह्नं प्रकृतिरसिको शावकगतिः तमश्चाहंकारौ जलजधनुषी हृद्रथपदम्।
गदा बुद्धिर्भूतानपि च वनमाला विषयिणः शरस्त्वत्स्थं सर्वं त्वयि किमुथवास्त्वर्पणपदम्॥४५

कौस्तुभमणि जीवात्माका चिह्न है। प्रकृतरसिक चन्द्रमा आनन्दका चिन्ह है। बालक हंस की गति निर्मल मन सन्तों की गति का चिन्ह है। अन्धकार तथा अहङ्कार को नष्ट करनेवाला तथा हृदय कमल को प्रफुल्लित करने वाला रथका पहिया चक्राकार सूर्यका चिन्ह है। हृदय के अन्धकार तथा अहंकारको नष्ट करना, हृदय कमलको प्रफुल्लित करना, तथा शत्रुओं का विजयकरके गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देना, इस प्रकार का भाव प्रकट करने के लिये शरणागतों को सुखप्रद कमल-रथ तथा धनुष के चिन्ह को प्रभुने अपने श्री चरणकमल में धारण किया है। पाञ्चभौतिक प्राणियों की बुद्धि को शुद्ध करना तथा पञ्चभूतों को सदा सुव्यवस्थित रखने के लिये आपने गदा का चिन्ह धारण किया है। विषयी जीवों को अपने वशमें रखने के लिये बाणों का चिन्ह तथा विषय सुख लालसा निवारण कर दिव्यसुख सच्चिदानन्द प्रदान करने के लिये "वनमाला" चिन्ह धारण करके आपने यह स्पष्ट दिखा दिया कि सम्पूर्ण सचराचर एवं लोक परलोकका वैभव मेरे ही हाथ में है। जब सब कुछ आपका ही और आप के ही अधिकार में है तब हमारा क्या है जो हम आपको अर्पण करने की धृष्टता करें ॥४५॥

अवस्टभ्येष्वासं त्रिणतमहिराट् भोगसुभगं दधानं संवर्तज्वलनशिखिमध्येन्दु विशिखम् ।
परं ज्योतिः पीताम्बरधरमपारोदितरूपम् पुरः प्रादुर्भूयान्मम किमपि देहान्तसमये ।४६

मेरे देहान्त के समय शेषनाग के समान तीन स्थानों में झुककर बांह पर लिपटे हुए धनुष को धारण किये अर्धचन्द्र धारण करनेवाले महाप्रलय की ज्वाला वाले भगवान् शंकर के समान तीक्ष्ण वाण को लिये हुए तथा करोडों सूर्य के समान तेजस्वी परमज्योतिर्मय पीताम्बर धारण करने वाला कोई परम तत्त्व (सर्व विश्व नियन्ता सर्वस्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामतत्त्व) मेरे सन्मुख प्रकट हो यही मेरी प्रार्थना है ॥४६॥

सवामश्चापाङ्कः स च धृतशरःपाणिरितरो-मुखं तद्राजीवायतविपुलरक्तान्तनयनम् ।
स्मितः श्रीः सालम्बी चरणयुगलं तच्च मृदुलं वपुस्तत्कल्याणं स्फुरतु मदस्रूडीनसमये ।

वाम भाग में श्रीकिशोरीजी हों, तथा बायें हाथ में धनुष हो, दाहिने हाथ में बाण हो, कमलदल के समान विशाल नयन लालिमा लिये हुए परम शोभा देते हों, मन्द मन्द मुसुकान माधुरी युक्त सुन्दर मुख की श्रीछिटक रही हों, तथा परम सुकोमल युगल चरणारविन्द परमानन्द

बरसाते हों, ऐसा दिव्य कल्याणमय श्यामल शरीर मेरे प्राणों के उडते प्रस्थान करते समय मेरे आगे प्रकट होकर मुझे धन्य बनाने की कृपा करें ॥४७॥

असाकेताधीशैरदशरथभूभृद्रतिकरैरकौशल्यावत्सैरमरकतसंकाशतनुभिः ।
अधानुष्कैरक्ष्मादुहितृवदनाम्भोजमिहिरैररामाख्यैर्नस्तैरलमलमलं दैवतगणैः ४८॥

जो साकेतधामाधीश्वर नहीं हैं, जो श्रीदशरथराज दुलारा प्यारा नहीं है, जो कौशल्याजी का लाल नहीं है। जो मरकत मणि के समान श्यामसुन्दर नहीं है। जो धनुषको धारण किये हुए नहीं हैं, जो श्रीधरणीपुत्री सीताजी के मुखकमल को विकसित करने वाले सूर्य नहीं है, तथा जिसका 'श्रीराम' ऐसा नाम नहीं उस देवता से हमको कोई काम नहीं है, उससे तो हम पूरण है, पूरण है, पूरण है, अर्थात् सर्वशरण्य श्रीरामजी के शरणाश्रित जीवों को अन्य सामान्य देवों के आश्रयण की कोई आवश्यकता नहीं है अतः सर्वाभयप्रद सर्वेश्वर श्रीरामजी के शरण में मैं हूं तो अन्याश्रयण व्यर्थ है यानी अन्य सभीदेव समूह हमारी रक्षामें असमर्थ हैं केवल श्रीसाकेताधीश ही समर्थ हैं ॥४८॥

मदाभ्यां मत्तैतं मम कुलगुरुं मत्कुलधनं मदिष्टं मद्भाग्यं मम परमविद्याँ मम गतिम् ।
मदीशं मांच्चन्तामणिमपि मदानन्दलहरीं प्रपद्ये मज्जीवं रघुपतिपदाम्भोजयुगलम् ४९॥

मेरा जो कुछ बना है इन्ही श्रीयुगलचरणों से है। मेरा जो कुछ है यही युगल चरण है। मेरे कुलगुरु मेरे कुल का धन सर्वस्व, मेरा परमप्रिय इष्ट, मेरा भाग्य, मेरी परमश्रेष्ट विद्या, मेरी परमगति, मेरे आराध्य ईश्वर, मेरी मनकामना पूर्ण करनेवाली दिव्य चिन्तामणी, तथा मेरे हृदय में आनन्दसिंधु लहराने वली दिव्य प्रेमलहरी एवं मेरे जोवन प्राण श्रीरघुपति राघवजी के श्रीयुगलचरण कमल ही हैं ॥४९॥

त्वदेकं प्राप्यं मां त्वदितरनिरुत्कण्ठहृदयं त्वदन्यं त्वय्येवासितनिखिलाशापरिकरम् ।
त्वयि न्यस्तप्राणं तवचरणपद्मैकशरणं तवस्वं त्वद्दासं रघुकुलरते मा त्यज विभो ॥५०॥

हे श्रीरघुनाथजी ? आप ही एक मात्र मेरे प्राप्य हैं। आपके बिना अन्य जो कुछ भी है मेरे हृदय को उत्कण्ठा रहित निरुत्साह बना देता है। आपके बिना अन्य जो कुछ है आपही से अनुप्रणित है। मेरी सम्पूर्ण आशा अभिलाषा आपकी कृपा द्वारा ही पूर्ण होती है। मेरे प्राण आप ही के ही श्रीचरणों में समर्पित है। मैं स्वयं भी एकमात्र आपके ही श्रीचरणकमलकी शरणागता हू। आप ही मेरा सर्वस्व धन हैं। मैं स्वयं भी आपकाही अपना हूं तथा आपके ह चरणाश्रय में रहनेवाला हू। ऐसे केवल आपके आधार पर रहनेवाले चरणाश्रित दासानुदास का हे विभो! कभी भी त्याग न करिये, बस यही प्रार्थना है ॥५०॥

धनुर्बाणौ गृह्णन् करकिशलयाभ्यां तनुरुचा तिरस्कुर्वन् सर्वं कुवलयवनीनां रुचिमिदम् ।
परिष्कुर्वन्वक्त्रं स्मितलवविलासेन मधुरंकदा वा मत्स्वामी शरणिमनयोरेष्यसि दृशोः५१

अपने दोनों कर कमलों में धनुषबाण धारण किये हुए हों, अपनी शरीर की कान्तिसे सुन्दर पुष्पवाटिका की मनोहर शोभा को लज्जित करते हुए, किञ्चिन्मात्र मन्द मन्द मुसकान से सुशोभित मुखारविन्द से मधुरता को भी सुमधुर बनाते हुए हे मेरे स्वामी ! हे परमकृपालु ! मेरे नयनों द्वारा आप दृष्टिगोचर होने की कृपा कब करोगे ? ॥५१॥

वहन्ती कोटीरं स्फुरदरुणकोटिप्रतिभरं हसन्ती स्वाद्युत्या त्रिदशपतिनीलक्षितिधरम् ।
धरन्ती कोदण्डं करकमलयोर्बाणमपि ये वसन्ती व्यक्तिः सा भवतु हृदये कापि मधुरा॥

करोडों अधरों की अरुणाई को लज्जित करनेवाली सुन्दर ललित लालिमा धारण करनेवाली, अपनी नीलरत्नमणी के समान कान्ति से इन्द्रलोक की स्वर्गीय नीलिमा का भी हँसनेवाली, अपने कर कमलों में धनुष और बाण को भी धारण करनेवाली वह कोई मधुर मूर्ति मेरे हृदय में बसने वाली हो जाय, अर्थात् नीलाम्बुज श्यामल प्रभु मेरे हृदय में बस जावें ॥५२॥

स्वभासामङ्कुरान्मृदुलनवदुर्वादलधिया लिहद्भिर्गाधेयाध्वरभुविपरीतो मृगगणैः
शिखण्डी कोदण्डी धृतकनकदामैकवसनो मनस्यस्मिन् भ्रात्रास्फुरतुरघुवंशार्भकमणिः ।५३ ।

अपनी नवदूर्वादल कोमलकान्ति से श्रीविश्वामित्रजी की यज्ञ भूमि को हरी हरी बनानेवाले प्रभु के चारों ओर नये नये दूर्वाङ्कुर की भ्रान्ति से मृगगण घेर कर खडे हो गये हैं और बडे प्यार से चाट रहे हैं, ऐसे सर्वश्रेष्ट शार्ङ्गधनुष तथा स्वर्ण के समान पीताम्बर वस्त्र धारण किये हुए अपने भाई लक्ष्मणजी के सहित श्रीरघुवंश – बालकों में सर्वश्रेष्ठरत्न श्रीराम मेरे इस मन में सदैव सुप्रकाशित होते रहें ।।५३।।

शरज्ज्योत्स्नाश्लिटेस्फुटकुवलयालीसुरभिते सिते गोदावर्य्यां मृदुनि पुलिने सौम्यपवने ।
सुखासीनक्षोणीदुहितृतन श्रृङ्गारनिरतं रघुश्रेष्ठं चेतः स्मरघनजटावल्कलधरम् ।।५४।।

शरद्पूर्णिमा की चान्दनी छिटक रहीं है, कमलपुष्पों की सुगंधी से दशों दिशायें सुरभित हो रही है, श्रीधरणीसुता जानकीजी के संग अत्यन्त आनन्द से श्रीकिशोरीजी के श्रीविग्रह के श्रृङ्गार में लगे हुए हैं, जटामुकुट तथा वल्कल वस्त्र धारण किये हुए हैं श्रीगोदावरी के शुभ्रमनोहर तट पर सुन्दर पुष्पों के उपवन में विराजे हुए श्रीरघुकुलशिरोमणी श्रीरामका हे मन ! तू निरन्तर स्मरण करता रह ।।५४।।

मनश्चापल्येन भ्रमसि गगने दिक्षुटसिततत्क्षणादुल्लंध्याब्धीनपि विससि पातालकुहरम् ।
न जाने का सिद्धिमिह रघुपतेरङ्घ्रियुगलं न किंस्वस्मिन्नेव स्मरसि परमानन्दनिलयम्५५

रे मन! तू अपनी चञ्चलता से आकाश में उड रहा है, तथा दशों दिशाओं में भटक रहा है, एक क्षण मात्र में समुद्र को भी लांघकर पाताल में घुसता रहता है, परन्तु इस व्यर्थ व्यापार करने से तुमको न जाने क्या सिद्धि प्राप्त होती है, इससे तो अच्छा है कि तू यहीं अपने श्रेष्ठ पवित्र स्थान में स्थित होकर अपने ही हृदय के भीतर श्रीरघुनाथजी के आनन्द भवन श्रीयुगल चरणारविन्दों का स्मरण किया कर, मेरे इतना शिखानेपर भी न जाने क्यों तू श्रीरामचरणों का स्मरण नहीं करता है ।।५५।।

त्यजत्वर्कोभानू निशितुहिनरोचिः परिहरत्वमुंज्योत्स्नामुच्चत्वमरशिखरीस्थैर्यमपि वा ।
क्षमावा क्ष्मादेवी विसृजतु मनस्ते दशमुखप्रहर्तुः पादाम्भोरुहविरहगन्धोऽप्यनुचितः।५६

यदि सूर्यनारायण दिन का परित्याग करदे, यदि चन्द्रमा रात्रि को त्याग कर दे, यदि सूर्य चन्द्र दोनों अपनी अपनी किरणों का प्रकाश को छोड दें, यदि सुमेरु पहाड अपनी स्थिरता का त्याग कर दें, यदि प्रृथिवी माता क्षमा सहनशीलता त्याग कर दें तो भी हे मन! दशमुख रावण को मारनेवाले श्रीराम के श्रीचरणों के क्षणभर वियोग की गन्ध का सहन करना भी अत्यन्त अनुचित है, यह निश्चित समझ ले । यानी स्वाभाविक स्वधर्मवाले सूर्य चन्द्र मेरु पृथिवी अपनेअपने प्रकाश स्थिरता या क्षमा को छोड नहीं सकते मानो कि वे अपने धर्म को छोड भी दें तो भी जीवों को अपना धर्म स्वरूप श्रीरामस्मरण या सान्निध्य का त्याग एक निमेशभर के लिये भी उचित नहीं ।।५६।।

वृथा कालो याति स्फुटितघटतो वारिविगलत्यनुश्वासं चायुर्गणयति कृतान्तो दिनगणम् ।
अये चेतः साधुस्त्वगतमखिलं कामपटलं परित्यज्यायोध्यारमणचरणौ गच्छशरणम्।।५७।।

फूटे हुए घडे में से जैसे धीरे धीरे पानी निकल जाता है वैसे ही तुम्हारी आयु का अनमोल समय वृथा ही नष्ट होता जा रहा है । प्रत्येक श्वास को गिन गिन कर काल कृतान्त दिन रात तुम्हारे आयु का हिसाब लगाता रहता है जहां तुम्हारी गिनती के श्वास पूरे हुए चट से तुम्हें पकड कर लेजायगा । इसलिए हे सज्जन चित्त ! तुम तो मेरी बात को मानकर तुमने जो अपने हाथों में संसार भर का भार उठा रखा है उन सबको तुरन्त त्याग कर श्रीअवधबिहारी प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों का शरणागत हो जा ।।५७।।

प्रवालं प्रत्यग्रं श्रुतियुवतिसीमन्तपदवीलतायाः शान्तानां हृदयसरसीसारसमयम् ।
मुदालिङ्गत्सीताकुचकलशसंक्रान्तघुसृणं कदा द्रक्ष्ये स्वामी तव रघुपतेः पादयुगलम् ॥५८

प्रभो ! शान्त महात्मा सन्तों के हृदय सरोवर में प्रेमकी मधुर प्रवाललता का सार सर्वस्व-स्वरूप जिन श्रीचरणों की ललिमा श्रुतिस्वरूपा युवती के सीमन्त की शोभा बढा रही है, (अर्थात् जो वेद वेदान्त का सार स्वरूप है ।) श्रीजनकराज किशोरीजी जिन चरणों को बडे प्यार से अपने हृदय पर धारण करती हैं एवं जिन चरणों का आलिङ्गन पोकर अत्यन्त प्रसन्न होती हैं, हे श्री रघुपति श्रीराम ! हे मेरे स्वामी ! आपके उन युगल श्रीचरणों का दर्शन मुझे कब होगा नाथ ? ॥५८

रसादालिङ्गत्यादरनलिनचक्रादिरुचिरायदीयाजानक्या हरिणमदलिप्तेस्तनतटे ।
प्रकाशन्तेरेखा नवजलदलेखास्मरघना तपस्याध्यञ्जं तद्रघुकुलवरेण्यस्य मृगये ॥५९

प्रेमरस भरित उमङ्ग से श्रीजानकीजी का आलिङ्गन करते समय जिनके हस्त की शंख-चक्र कमलादि रेखायें कस्तूरी केशरचन्दन से लिप्त शरीर पर प्रकाशित हो रही है उस रघुकुल वरेण्य श्रीराम के चरणकमलों के मैं दर्शन चाहता हूं ॥५९॥

जलक्रीडाचक्रे कमठपतिरब्धावहिपतिः सुखं शिश्येशश्रान्ता शामतुलमवापुर्हरिदिभाः ।
धृते यत्पादाभ्यामखिलधरणीमण्डलभरे मदक्षिद्वंद्वं श्रीपदकिशलयं ते मृगयते ॥६०॥

जब प्रभु श्रीरामजी ने कृपा कर इस भूमण्डल पर श्रीचरणारविन्द पधराये तब पृथिवी का भार हल्का हो जाने से शेषनाग तथा कमठराज आनन्दित होकर आपस में जल क्रीडा करनेलगे दशों दिशाओं के दिग्गज सुखपूर्वक शयन करने लगे । सर्वशरण्य श्रीरामजी के आनेसे सब निश्चिन्त होंकर विश्राम करने लगे, हे प्रभो ! मेरी ये दोनों आंखे भी उसी श्रीचरणकमल का दर्शन कर सर्वदा के लिये निश्चिन्त होना चाहती है ॥६०॥

न यज्ज्ञात्वा ज्ञेयं किमपि निगमे नो रसमयं न यद्ध्यात्वाध्येयं किमपि हृदयेन्यत्सुखमयम्
न यत्प्राप्त्वा प्राप्यं किमपि परमं क्वापि मृगये तदेवाहल्यादुष्कृतविदलनं पादनलिनम्।६१

जिसको जानने के पश्चात् वेदों में कुछ भी रसमय ज्ञेयतत्त्व अवशिष्ट नहीं रहता है । जिसका ध्यानकर लेने पर हृदय को सुखमय बनाने वाला कोई भी ध्यान शेष नहीं रहजाता है। जिसको प्राप्तकर अन्य कोई भी श्रेष्ठतम तत्त्व प्राप्त करना कहीं भी कुछ भी बाकी नहीं रहता है, अहल्या के दुष्कर्मों के पापों का विनाश करनेवाले उसी श्रीचरण कमलों को केवल उन्हीं चरणों को मैं चाहता हूं ॥६१॥

अमूभ्यां नेत्राभ्यामपरिमितहर्षाश्रुतरलं भुजाभ्यामभ्याभ्यां बहुलकुतुकोत्कीर्णपुलकम् ।
परिरभ्योद्गाढं सफलयितुमेताजनिमहं रजः पूताहल्ये चरणकमले एव मृगणे ॥६२॥

हे नाथ? निस्सीम अत्यन्त हर्षपूर्वक प्रेमाश्रु बहाते हुए इन्हीं दोनों नेत्रोंसे मैं आपका दर्शन करूं । आनन्द से पुलकायमान होकर बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक मेरी इन्हीं दोनों भुजाओं से मैं आपका प्रेमालिङ्गन करके अपने इस मानवजीवन को धन्य धन्य करूं । मेरे जन्म को सुफल बनाते हुए जिन चरणों की रज से अहल्या पवित्र हुई केवल एक मात्र उन्ही श्रीचरणों की प्राप्ति की कामना करता हूं ॥६२॥

त्रयी राजीवाक्षी चिकुरनिकराकारजलधिः स्फुरत्सीमान्ताकृत्युपमितमहासेतुजलधिः ।
अहल्यादेहालङ्करणपटवासद्युतिधराः परागां यान्त्वास्मान् भवतिमिरकूपक्षयकृतः ।६३

जिनके चरणकमल वेदत्रयी के मार्मिक रहस्यको दिखाने वाले दिव्य नेत्र कमल हैं । जिनके मुखकी डोडी चिकुरको गहिरापन महिमा का अपार समुद्राकार स्वरूपज्ञान कराता है, जिनके चरण की रज अहल्या के मस्तक पर सीमन्त में सिन्दूर की भाँति लगा कर संसार को दिखादिया कि अपार संसार से पार होने के लिये प्रभु के चरण की रजही महान् सेतु है। जिन चरण कम ल

का पराग अहल्या के देहका अलंकार वस्त्रादि महान् प्रकाशमान् बनकर वता दिया कि भवतिमिररूप अंधेरे कुए का दुःख नष्ट करने के लिये केवल प्रभु के चरण कमल की रजरूपीं पराग ही महान् समर्थ है अन्य कोई नहीं, वही आपके श्रीचरण हमारे संसार कूप के अन्धकार का क्षय करने वाले हों ॥६३॥

कदा वा कोटीन्दुद्युतिभरनिरासोद्यमधराः अहल्याघं मिल्लस्थलललितमल्लीसुमनसः ।
नखद्युत्याधूताऽपरिमितमनोध्वान्तनिचयः समग्रावग्राहं मम कवलयेयुर्नयनयोः ॥६४॥

करोडों कोटि चन्द्रमा की मनोहर ज्योति को परास्त करने के उद्यम में लगे हुए अर्थात् करोडों चन्द्रमा की मनोहर छबिको लज्जित करनेवाले, अहल्या के पापों को मिलाकर उस अहल्या उद्धार के स्थलको पावन करनेवाली सुयशरूपी सुगन्धित रज से ललित पुण्यस्थल बनानेवाले किञ्चित् नखकी द्युति से मनको परमपवित्र बनाकर मानसिक महान् अन्धकार के समूह को नष्ट करनेवाले प्रभु के श्रीचरणकी मैं तो सम्पूर्ण ज्योति प्रकाशमय झांकी अपने इन्हीं नयनों से करना चाहता हूं ६४

विसृज्यायोध्यायद्वनभुवि चचारोपलचयैः कुशैः कासैर्विध्यदधिकतरदारुण्यमभवत् ।
द्रवन्तं यन्मायाहरिणमनुदुद्राव मृगये तदंघ्रिद्वन्दं श्रीकुचयुगपरिष्वक्तमसकृत् ॥६५॥

श्रीअयोध्याकी साम्राज्य लक्ष्मी का परित्याग कर जो पत्थर कंकड से भरी हुई वनभूमि में विचरण किये कुशकास के कंटकाकीर्ण मार्ग में चलने से जिनके चरणों के तलवे में कुशकास की जडें गडगड कर अधिक लाल हो गये हैं। जो माया मृग मारीच के पीछे उसकी भक्ति से द्रवीभूत होकर दौड रहे थे, तथा जिनके चरण श्रीजी के वक्षस्थल में वारंवार क्रीडा करते रहते हैं, उन श्रीराघवेन्द्र प्रभु के श्रीयुगलचरणों का दर्शन मुझे भी प्राप्त हो यही प्रार्थना है।६५।

गजाः सिंहा व्याघ्रा मृगशशवराहा वनचरा मयूराः कादम्बापिककवलखक्रौंचकुरराः ।
तथान्ये धन्या यैः शमितनयनावग्रहमहो महानीलश्यामं खररिपुः सदासेवितमभूत् ६६

वनलीला प्रसङ्ग में नीलाम्बुजश्यामल खरदूषणारी श्रीराम की सेवा का तथा दर्शनस्पर्शको जिन्होंने लाभ लिया है उन हाथी-सिंह-वाघ-हरिण-खरगोश-वराह (सूअर) आदि वनचर तथा मयूर-तोता-मैना-क्रौंच-कुररी आदि पक्षियों को धन्यवाद है, जिन्होंने सदा प्रभु की सेवा अपने क्रीडा कौतुक द्वारा करके अपना जीवन धन्य बनाया है, उन सबको मेरा प्रणाम है ॥६६॥

तृणत्वं नासीन्मे किमपि सरयूरोधसि मनोरमारामे धिग् धिग् धिगिदमधमं मानववपुः ।
यदेवं कौशल्या तनयचरणाम्भोजयुगलीपरिरम्भानन्दप्रभवभवनं नेह भवति ॥६७॥

अहा-धिक्कार है वारंवार मेरा इस मानव देह को धिक्कार है जो श्रीसरयूतट पर तृण भी न हो सका, जो श्रीकौशल्यानन्दन रमारमण श्रीरामके युगलचरणारविन्द का अमृतमय सुखद स्पर्शपाकर उनके श्रीचरणों का आलिङ्गन का परमानन्द प्राप्त करके धन्य धन्य हो जाता (इस मानव शरीर से तो उनका दर्शन भी दुर्लभ हो रहा है)॥६७॥

प्रणामं साष्टाङ्गं तृणतरुलताभ्योहि निरुतं प्रभावेभ्यः कुर्यां विनयसरलं भक्तिबहुलम् ।
अरण्या भोगे यत् किशलयमयीं लक्ष्मणकृतामलंचक्रे शय्यां सहमहिलया रामशयनम्। ६८

हम उन तृण-लता तथा वृक्षादिकों को अत्यन्त विनय पूर्वक प्रेमसे वारंवार साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं, वे बडे ही प्रभावशाली भाग्य सम्पन्न हैं, जो जङ्गल में रहते हुए भी अपने सुको-

मल पत्ते देकर श्रीलक्ष्मणजी द्वारा श्रीरामशय्या बनने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। जिन कोमल पत्तों की शय्या पर अपनी प्राणप्रिया श्रीजानकीजी के सहित श्रीराम शयन कर उन्हें कृतार्थ करते हैं अलंकृत करते हैं ॥६८॥

वनानां वन्यानामपितनुभृतां वा नदनदीं गिरीन्द्राणां याद्दकूछिकजननसाफल्यमभवत्।
कटाक्षैः कल्याणैर्द्रुहिणहरमृग्यैर्घनकृपारसासारैः पूता अहह रघुनाथस्य यदि मे ॥६९॥

जिन वनों को, वनवासियों को, नद नदियों को, अथवा पर्वतादिक या शरीरधारियों का पृथिवीपर देहधारण करनेका साफल्य प्राप्त हुआ है अतः वे सब धन्य हैं धन्य हैं शिव ब्रह्मादिक देव देवेन्द्र भी जिनकी कृपाकटाक्षका कणमात्र पाने के छिये भी तरसते हैं उन्हीं श्रीरामजी की सम्पूर्ण रसमयी कृपा का सार प्राप्त कर ये सब पावन हो रहे हैं, यदि उसी कृपा का रस मुझे भी प्राप्त होजायतो मैं भी धन्य धन्य होजाऊं ॥६९॥

अहो भाग्यं तेषां निशिचरभटा ये जहुरसून् रणाग्रे पश्यन्तः शरसुकलिताङ्गा रघुपतेः।
ज्वलत्संवर्ताग्निप्रतिभटकटुक्रोधमपितत् मुखं लोकैकासेचनमृदुलहासं प्रकृतितः ॥७०॥

अहो, उन निशाचर भटों का वडा सौभाग्य है जिन शूरवीरों ने रणभूमि में प्रलयाग्नि के समान जलते हुए श्रीरामके बाणों से जर्जर होकर अत्यन्त क्रोध से भरे हुए कटु भाव रखतेहुए भी मरते समय में श्रीरघुनाथजी का स्वाभाविक मधुर भावसे मन्द मन्द हँसते हुए मुखारविन्दके दर्शन करते हुए अपने प्राणों का त्याग किया ॥७०॥

अयोध्यायाः पत्युः सुरुचिरजगन्मोहनप्रिय स्मृतः श्रीप्रासादं वदननलिनं चारुनयनम्।
मुहुश्चुम्बत् धात्री दुहित्रीमुखवीटीरसलसत् कपालं दृष्टं मे विधिरहहसाह्यं न कुरुते ॥७१॥

श्रीअयोध्यानाथ के परम रुचिर जगतको मोहित करनेवाले अत्यन्त प्रियतम अति सुन्दर नयनों से सुशोभित मनोहर मुखारविन्द कमल को श्रीकिशोरीजी की कृपा से मैंने आज स्मरण किया, जिसकी श्रीकौशल्या अम्बा प्रेम से विभोर होकर वारंवार चुम्बन कर रहीं हैं तथा उनके मुख के पानवीडा का रस प्रभु के कपोलों पर लग रहा है, मैंने अपने ललाट के लेख पढे कि उसमुखारबिन्द की छवि के दर्शन मेरे भाग्य में है कि नहीं? परन्तु हायरे दुर्भाग्य क्या करूं अरेरे! विधाता तुम भी मुझ अभागे की सहायता नहीं कर रहा है ? ॥७१॥

किमाभ्यां नेत्राभ्यां फलमिह रघूणामधिपतेर्न पीता याभ्यां तद्वदनशशिसौन्दर्यलहरी।
इमौ दोषौ दोषौ कमलदरचक्राङ्कलसितं न याभ्यामाश्लिष्टं तव चरणराजीवयुगलम् ॥७२॥

मुख छबि के सौन्दर्य रस का पान करने को तो इन अभागे नयनों से न मिला, परन्तु श्रीराघवेन्द्र सरकार के कमल-चक्र-शंखादिक सुललित चिन्हों से अङ्कित उनके दिव्यातिदिव्य श्री चरणों का भी जिन हाथों ने प्रेमपूर्वक आलिङ्गन न किया उन अभागे नयनों हाथों को मिलने से ही क्या लाभ! उन आँखों हाथों का तो मिलना न मिलनो बरावर ही है जो अपने स्वधर्मभूत लक्ष्य प्राप्त करने में असमर्थ रहे ॥७२॥

दुराशं दुर्बुद्धिं दुरितकुनदीप्राविशमिमं सुनिर्लज्जं धिङ्मां सकलजनहासोचितकृतिम्।
तितीर्षुर्बाहूभ्यामिव जलनिधिं हे रघुपते! दिदृक्षे योऽहंत्वां विधिशिवमुखध्यानविषयम् ॥७३॥

हे श्रीरघुवंश विभूषण रघुनाथजी! मेरे जैसा दुराशा रखनेवाले, दुर्बुद्धि महादुष्ट, भयङ्कर पापोंकी घोर वैतरणी नदी में गोता लगानेवाले महानिर्लज्ज मनुष्य को वारंवार धिक्कार है जो सम्पूर्ण जगत में हास्यास्पद कार्य करने वाला है, इसकी धृष्टता को देखिये कि यह पामरक्षुद्रजीव अपने

हाथों से तैरकर भवसागर को पारकर लेना चाहता है तथा जो ब्रह्म शिवादि देवगण शिरोमणीके आराध्य है यानी उनको भी कभी ध्यान में ही आते हैं परन्तु दर्शन तो दुर्लभ ही है मैं उनका अर्थात् सर्वाराध्य आपका इन नयनों से दर्शन करना चाहता हूं ऐसा निर्लज्ज कौन होगा? ॥७३॥

स्ववक्त्रेन्दूद्भूतं श्रवणविवरं ते तनुभृतां शिवोवर्षन् काश्यां वसति सहगौर्य्या रघुपते !।
पुनर्जन्मव्याधिप्रभवजननीगर्भशमनं प्रचण्डप्रत्यूहं तव मधुरनामामृतरसम् ॥७४॥

श्रीशंकर भगवान् श्रीपार्वतीजी के साथ काशीपुरी में वास करते हुए अपने मुखरूपी चन्द्रमा से प्रकट हुए, पुनः पुनः जन्म मरण की प्रचण्ड व्याधिका विनाश करनेवाले श्रीरामनामरूपी मधुर अमृतरसकी वर्षा मरण के समय सभी देह धारियों के कान में वरसाकर उनके जन्ममरण जननी गर्भ शयन की व्याधिका सदा के लिये विनाश कर देते हैं ॥७४

क्व माधुर्य्याधिक्यं दधिघृतसितापायसमुधामधुस्वाम्रद्राक्षापनसकदलीनां फलरसे ।
क्व कांक्षा कौशल्याहृदयजलधीन्दो मनसिचेदजस्त्रंत्वन्नामस्मरणनवपीयूषलहरी ॥७५॥

हे श्रीकौशल्या अम्बा के हृदयरूपी समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा स्वरूप श्रीराम! यदि आप किसी भाग्यशाली के हृदयाकाश में विराजमान हैं, जिनके आपके रूपरसमाधुरी का रसास्वादन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसको दही-दूध-घी-मिश्री-मधु-द्राक्ष-कटहल-केला तथा अमृत रसमें भी माधुर्यता की अधिकता क्या लगेगी? तथा जो आपके नामस्मरणरूपी नवीनतम सुधारसलहरी का रस पान करता है उसको अन्यतुच्छ रसों का आस्वादन करने की आकांक्षा भी क्यों होगी ?

जो तोहि राम लागते मीठे, तो षटरस नवरस सब अनरस, हो जाते अति सीठ ।
तुलसी जोलौं जगतकी मुधा माधुरी मीठ । तो लौं सुधा सहस्रसम, रामभक्ति सुठि सीठ ॥७५॥

तुरीयं षष्टं वा सरिदधिपतिपञ्चममपि द्वितीयं मन्यन्ते प्रथममिव सन्तो रघुपते ? ।
लिहन्तस्तन्नामामृतरसमजस्त्रं रसनया पवित्रीकुर्वन्तः सुचरणरजोभिः क्षितितलम् ॥७६

हे श्रीरघुपते ! आपके नामामृत का निरन्तर रसपान करनेवाले सन्तजन जैसे रसनासे किसी मधुर रसको वारंवार चाटते हैं फिर भी मन नभरता हो ऐसे आनन्द होकर प्रेमविभोर हृदय से रसपान करते हैं कि प्रथमवार-दूसरीवार-तीसरीवार-चौथीवार-पांचवीवार-छठीवार अथवा सातवीं वार रसनासे आपके नामरसका पुनः पुनः स्वाद लेते हुए भी मानों अभी प्रथम ही वार उच्चारण कर रहे हों ऐसा आनन्द लेते हुए अपने श्रीचरणों की रज से वे नामानुरागी सन्तजन इस वसु-धातल को पवित्र करते रहते हैं ॥७६॥

अहल्या वेत्तित्वच्चरणरजसः शक्तिमतुलां भवद्दास्यानन्दं निरवधिरुचिं लक्ष्मणमनः ।
शिवो वा वाल्मीकिर्भवदसमनामामृतरसं धरित्रीकन्यैव त्वदधरमधूनां मधुरताम् ॥७७

आपके श्रीचरणरज की अपरम्पार शक्ति को श्रीअहल्याजी जानतीं हैं। आपके दास्य भावसे सेवा कैंकर्य का सीमारहित सुख वा अभिरुचि को श्रीलक्ष्मणजी का मन जानता हैं । श्रीशिवजी तथा श्रीवाल्मीकिजी आपके अतुलनीय नामामृत के रस को जानते हैं तथा आपके अधरामृत की मधुर माधुरी को श्रीधरणीनन्दिनी श्रीजानकीजी ही जानती है ॥७७॥

हनूमान् वेत्तित्वच्छुभगणकथास्वादनरसं भवत्पादत्राणाप्रतिमसहिमानं च भरतः ।
गिरिर्भूमिशाला अपिभवदमोघां शुभगतिं त्वदीयस्त्वन्माया सलिलनिधिपारंरघुपते ॥७८॥

आपके शुभ गुणानुवाद कथा का रसास्वादन का पुनीत रस श्रीहनुमानजी जानते हैं, आपके श्रीचरणपादुकाओं की महान् महिमा श्रीभरतजी जानते हैं, आपकी पदयात्रा का परमसुख पर्वत

भूमि तथा आपके प्यारे सन्तों के आश्रम तथा पर्णकुटी जानती है, तथा आपकी माया के सागर से कैसे तरा जायगा यह आपके प्यारे महाभागवत सन्त जानते हैं प्रभो? आपके इस अमित ऐश्वर्य को मैं पामर जीव क्या जानूं? ॥७८॥

त्वदंशो वेत्ति त्वत्पृथुलभुजसारं भृगुपतिर्भवत्क्रोधाटोपं प्रलयशिखिरूपं जलनिधिः।
जयन्तस्त्वत्क्षान्तिं परममपराधी जगति को महात्मामाहात्म्यं ननु तवमनोवाक्सुविषयम्।

आपका अंश एक कलामात्र भी प्राप्त हो जाय उसकी भुजा में कितना पराक्रम भर जाता है यह भृगुपति श्रीपरशुरामजी जानते हैं आपके विकराल क्रोधका घटाटोपआतङ्क समुद्र जानता है। आपकी क्षमाका निस्सीम स्वरूप महान अपराधी इन्द्रपुत्र जयन्त जानता है तथा मनवाणीसे बर्णन करना अगम्य ऐसे आपके माहात्म्य को महान् महात्मा पुरुष ही जानते हैं ॥७९॥

व्रतैःकिं दानैः किमखिलनदस्नानादिकरणैर्जपैः किं होमैः किं किमथविविधाम्नायपठनैः।
किमन्यैर्वाधर्माचरणघनमोहैर्हृदि न चेत् परिष्वक्तं पादाम्बुरुहयुगलं ते रघुपते?॥८०॥

हे रघुपते! यदि आपके युगल श्रीचरणकमलों में मन आसक्त न हुआ तो संसार में अनेकों प्रकार के व्रत करने से क्या लाभ? दान देने से तथा सम्पूर्ण तीर्थ नद तथा नदियों में स्नान करने से ही क्या? अनेको मन्त्रों को जप करने से तथा विविध प्रकार से वेदों के पाठ करने से भी क्या लाभ? उसी प्रकार से अन्यान्य अनेक धर्माचरण करने पर भी यदि आपके चरण कमल में प्रेम न हुआ तो इन साधनों में व्यर्थ परिश्रम करने से क्या लाभ होगा? ॥८०॥

समन्विष्यज्ञानाञ्जनविषयदृष्ट्या श्रुतिखनीं पुमर्थानां दाता मरकतमणिराघवमयः।
स एको लब्धोमे गुरुभिरुपदिष्टः करुणया मनः पेट्यामास्ते कथमथभवेद्दुर्गतिकथा ८१

अपने नेत्रों में ज्ञानअञ्जन लगाकर परम विशुद्ध दृष्टि से श्रुतियों की कन्दराओं में खूब मन लगाकर परमतत्त्व का अन्वेषण किया तो सभी परमपुरुषार्थों के दाता मरकतमणि घनश्याम कान्ति वाले श्रीराघवमय ही सभी श्रुतियों का सारसर्वस्व दीख रहा है, यह निश्चितरूप से जान पडा। मुझे वही एक तत्त्व श्रीगुरुमहाराज की करुणा से उपदेश रहस्य प्राप्त हुआ है मैंने उसको अपनी मन की पिटारी में छिपाकर रख लिया है, अब मेरी दुर्गति कभी भी कैसे हो सकती है? मेरा तो कल्याण ही कल्याण है ॥८१॥

पयोभिः प्रत्यग्रैर्दधिघृतसितादिव्यसुमनोरसैःकस्तूरीभिः शुभपरिमलैश्चन्दनरसैः।
सरय्वाःनीरेण सुशुचिरभिःसिञ्चामि मनसा हृदाम्भोजानैकाभरणरघुवीरांघ्रिनलिनम्।

अहा आज मेरा कैसा सौभाग्य है कि मैं आज दही-दूध-घृत-मिश्री-मधु आदि के द्वारा बने हुए पञ्चामृत से तथा कस्तूरी चन्दनसे एवं श्रीसरयूके सुपवित्र जल से प्यारे प्रभु की प्रेम से सींच सींच कर स्नान करा रहा हूं। मेरे हृदयरूपी जल में उत्पन्न, सम्पूर्ण विश्व के अनन्त शृङ्गार स्वरूप श्रीरघुनाथजी के चरण कमल की सेवा का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है अतः मैं धन्य धन्य हूं ॥८२॥

तडित् कोटीभासं तव कटितटे हाटकपटं किरीटं केयूरं शिरसि भुजयोः कौस्तुभमणिम्।
उरस्यर्काकारं श्रवणयुगले कुण्डलयुगं विभो! चेतः सिंहासनसमधिरूढस्य कलये ॥८३॥

आपने करोडों बिजली के समान प्रकाशित स्वर्णसूत्रों से निर्मित पीताम्बर कमर में पहरे हुए हैं, किरीट शिरपर शोभा दे रहे हैं, भुजाओं में केयूर की छवि चमक रही है, हृदय में सूर्य के समान आकार वाला कौस्तुभ मणी तथा कानों में कुंडल लटक रहे हैं, हे प्रभो! इस प्रकार

आप मेरे चित्तरूपी सिंहासन पर विराजमान हैं, मैं अपने हृदय में आपकी इस मनोहर छबि का दर्शन करता रहूं यही चाहता हूं ॥८३॥

गलेमुक्ताहारान् शशिकिरणसंकाशमहसोनवोद्यद्द्वौरत्नद्युतितरलमाणिक्यतरलान् ।
कराम्भोजद्वन्दे कनकवलये राम कलये त्वदीयाख्यामुद्रां नवमणिमपीरङ्गुलिषु ते ॥८४॥

चन्द्रमा की महान् द्युतिके समान मुक्तामणियों का हार गले में धारण किये हैं। जिसकी नवीन द्युति के प्रकाश में सुशोभित अपनी ज्योति का दिव्य प्रकाश छिटकाते हुए मणिमाणिक्य चमक रहे हैं। दोनों कर कमलों में स्वर्णरचित कडे कंकण पहने हुए हैं। तथा दोनों करकमलों की अंगुलियों में नवीन मणियों की नगजटित अंगुठियाँ धारण किये हैं जो व्याख्यानमुद्रा के समय मनको मोहित कर लेती है, मैं आपकी उसी झांकी को हृदय में धारण करता हूं, अर्थात् उसी स्वरूपका ध्यान करता हूं ॥८४॥

मणिं मन्ये भानुं हिमकिरणमास्यं तनुमपि श्रियः शम्पां वृष्टिं किमलमधुचिन्हं नवघनम्
उडन्मुक्तामालास्त्वदुर उरगारिध्वजनभो विभान्त्यस्मिन्नेते युगपदिति चित्रं महदिदम्

आपका कौस्तुभमणि सूर्य है, हिमकिरणों के समान अमृत मय आपका मुख चन्द्रमा है। आपका नवीनघन के समान सुन्दर श्यामल शरीर है। श्रीकिशोरीजी शरद चान्दनी के समान हैं, आपके हृदय पर मुक्तामणियों की माला ताराओं के समान सुप्रकाशित हो रही है। और आपका हृदय ही निर्मल आकाश है, इस प्रकार की आपकी मनोहर छबि का लाक्षणिक दर्शन कर महान् आश्चर्य होता है कि परस्पर विरुद्ध होते हुए भी ये सब एकत्र निवास कैसे कर रहे हैं ॥८५॥

तडिद्वल्यानीलो घन इव तमालक्षितिरुहो यथारूढः स्कन्धः कनकलतया नीलशिखरी।
मयूखेनार्कस्योद्यत इव रघूणां परिवृढो हिरण्याकारेणोल्लसित उपनीतेन जयति ॥८६॥

विद्युल्लता के समान श्रीकिशोरीजी हैं, नीलघन के समान श्रीरामजी हैं दोनों युगल प्रभुकी झांकी ऐसी सुन्दर लगती है कि जैसे तमाल वृक्ष के स्कंधपर कनकलता लहरा रही है। सूर्यके उदय की वेला में जैसे उसकी किरणें चारों ओर फैलती है वैसे ही रघुवंशियों में श्रीराम के चारों ओर आनन्दित उल्लसित होकर रघुवंशकुमार स्वर्ण के प्रकार कोट की तरह सुशोभित हो रहे हैं ऐसे श्रीरामका सदा जय हो, जय हो-जय हो ॥८६॥

अयं येन व्याप्तस्त्रिभुवनतटाको बलिमुखे यतो जाता गङ्गा मधुहरशिरोभूषणमयम् ।
परागाणुर्यः कोप्यवरमनयद्यस्य चरतां विमोसद् पादाब्जं कनककटकोद्भासिकलये ॥८७

यह सम्पूर्ण त्रिभुवन जिसके द्वारा व्याप्त है, जैसे तालाव में जल ही जल रहता है जिसके श्रीचरण से गंगा प्रकट हुई है जो श्रीशंकरजी के मस्तक का विभूषण बनी हुई है जिसका पराग महान् पुरुषों के मनको मधुप बनाकर विचरता रहता है हे प्रभो ! वह आपके श्रीचरणकमल जो स्वर्ण नूपूरों से सुशोभित परमसुख प्रद हैं सदैव स्मरण करता हूं ॥८७॥

दशाशामध्योज्जृंभितपरिमलोदारमधुरः स्रवन्माध्वीधारा प्रचुरतुलसीदामरुचिरः।
नवारण्यावल्याभरण इव गारुत्मतगिरिर्मनोऽयोध्यामध्ये दशरथकुमारो विजयते ॥८८॥

दशों दिशाओं में जिसकी महान् उदारता की मधुर सुगन्धी का परिमल फैलता ही रहता है, तुलसीपत्रकी मालाओं से परमरुचिर मधुरसधारा झरती रहती है, नवीनवाटि का लताओं का विभूषण स्वरूप जो सुमेरु पर्वत को भी सुशोभित कर रहे हैं ऐसे दशरथराजकुमार मेरे मनरूपी अयोध्या में विहार करते हुए सदैव विजयी हों ॥८८॥

दरोन्मीलन्मुग्धैः स्रवदतुलमाधुर्यमधुभिः स्वसौरभ्याहूतभ्रमरनिनदाकान्तभुवनैः ।
वियद्रङ्गाजातैः कनककमलैर्भूषिततनुर्मनः श्रीवैकुण्ठे परमपुरुषोऽयं विजयते ॥८९॥

जिनके अधरों की मन्द मन्द मुग्ध मुसक्यान से अतुलनीय माधुर्य मधु बरस रहा है, जो अपनी दिव्य सुगन्धी से मधुरसभोजी प्रेमी भ्रमरों को बरवश खींचकर उनके मधुर गुंजार से त्रिभुवन को भरपूर कर रहे हैं, जो बिजली के रंग के समान सोने के कमल फूलों के आभूषणों से अपने श्याम शरीर को बिभूषित किये हुए है ऐसे परमपुरुष प्रभु मेरे मनरूपी वैकुण्ठ में सदा बिजयी होकर विराजमान रहें ॥८९॥

घनामोदव्याप्त्या घुमघुमितविद्ध्यण्डकुहरैर्जपापुष्पच्छायैर्घसृणमसृणैश्चन्दनरसैः ।
यथा सिन्धुः संध्याद्युतितिमिरलिप्तो रघुपतिः पतिः ब्रह्माण्डानामधिवसतिहृत्पुष्पकमिदम्

परमानन्द घन प्रमोद की सर्वत्र भरपूर व्याप्ति से समस्त ब्रह्माण्ड उसकी धमाधम बरसती हुई सीकरों से महान् सुखमय हो रहा है । जपाकुसुमकी शीतल छाया में चन्दनरस मिलाकर बनाये हुए अंगराग से अर्चित रघुपति की छबि, संध्याकाल में सूर्यास्त की लालिमा से अनुरञ्जित सागर की भांती श्यामरंग पर लाली की शोभा छीन रही है । ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डों के अधिपति श्रीरघुपति मेरे हृदयरूपी पुष्पक विमान पर विराजमान होकर परमसुख प्रदानकर रहे हैं ॥९०॥

मुखं मुग्धस्निग्धाधरकिशलयोल्लासिमधुरं स्मितां क्रूराकाराभिनवकलिकैकाभरणम् ।
विभोर्धात्रीपुत्रीनयनकमलाह्लादजनकं हृदेतत्कस्तूरीतिलकरुचिरचुम्बितमुहुः ॥९१॥

आपका मुख कमल मनको मुग्ध करने वाला है, नूतन किशलय को उल्लसिन विकसितकरने वाले मधुर अरुणारे चमकारे चिकने ओष्ठ है, मन्द मुसम्यान को अंकुरित करनेवाले, नवीन कलिकाओं को उदित करने के समान दन्तावली शोभा दे रही है, श्रीजनकराजनन्दिनीजी के नयन कमलों को आह्लादित करनेवाले हे प्रभो! ललाटमें कस्तूरी का तिलक परमरुचिर सुशोभित है। जो वारंवार हृदयानन्द को लहराते हुए परमसुख दे रहा है ॥९१॥

स्वतस्तेजोराशिहृदयपरमव्योम्नि यमिनां वसन् सीताजानिः परिदलितहार्दान्धतमसः ।
यया बिम्बत्रय्या भवति कृतिनीराजनविधिः तयाप्राप्ताचण्डातपनिहितदीपप्रतिकृतिः॥९२

हे सीतापते ! आप स्वयं दिव्य तेजकी राशी हैं तथा योगी जनों के हृदयाकाश में निवास करके हृदय के अन्धकार को नष्ट कर देते हैं । वह तेजोराशी बिम्ब तीनों वेदों की आकृति धारणकर नीरांजन (आरती) की विधिपूर्ति करता है उसी आपके श्रीविग्रह की तेजोमय ज्योतिके प्रचण्ड तेजस्वरूप को सूर्य में थोडीसी रखी गयी है उससे सूर्य आपके सम्मुख दीपक की भांति लगते हैं ॥९२॥

प्रसूनान्याहृत्यार्चयितुमनिशं ? ते पदयुगे सहस्रं हस्तानामभिलषति मे मानसमिदम् ।
सहस्रंनेत्राणामपितवतनुं द्रष्टुममलां सहस्रंवक्त्राणामपि रघुपते?ते स्तुति विधौ ॥९३॥

हे प्रभो ! आपके श्रीयुगलचरणारविन्दों में सुन्दर सुन्दर फूलों को लाकर चढाने के लिये मेरा मन चाहता है कि मुझे हजारों हाथ हो जांय जो खूब पुष्पाञ्जली चढाने का आनंद लूटता रहूं। तथा आपके श्यामल सुन्दर शरीर का दर्शन करने के लिये हजारों नेत्र भी चाहता है तथा आपकी स्तुति करने के लिये गुणानुवाद गाने के लिये हे रघुपते ! मेरा मन हजारो मुख भी चाहता है॥९३॥

अदन्कन्दं मूलं फलमपि चरन्पुण्यसरयूतटारण्याभोगे गतविषयरागो रघुपते ?।
कदा वा त्वत्पादाम्बुरुहयुगली लीनहृदयः करिष्ये निःशेषं भुवनसमुदायं तृणमिव ।९४॥

हे श्रीरघुनाथजी ! श्रीसरयूतट पर वन लताओं में विचरण करते हुए सम्पूर्ण विषयभोगों का परित्याग कर कन्द मूल फल शाग पत्ते खाकर जीवन निर्वाह करता हुआ आपके श्रीयुगलचरणों में मेरा हृदय ऐसा कब लीन होजायगा कि उस दिव्य सुखके सम्मुख त्रिभुवन का साम्राज्यसुख को भी तृण के समान त्याग कर सकूँ ॥९४॥

निरस्ते षड्वर्गे विषयिषुजितेष्वेषुसकलेष्वखण्डे वैराग्ये प्रबलतरभक्त्या कवलिते ।
प्रसन्ने हृद्यस्मिन् स्वयमुदितमूर्तौ रघुपते कदास्यामश्रान्तं निरवधिकसन्तोषभरितः॥९५॥

काम क्रोधादि षड्रिपु निरस्त हो गये हों, सभी विषयों को जीतकर सम्पूर्ण अखण्ड वैराग्य का पुण्योदय हो गया हो, आपकी प्रवल तीव्रतर प्रचण्डभक्ति से हृदय भरपूर हो गया हो मेरे हृदय में स्वयं परम प्रसन्न होकर आप अपना राज्यसिंहासन बनाकर विराजमान हो गये हों, हे श्रीरघुनाथजी ऐसा परम शान्त निस्सीमसन्तोष से भरा हुआ मेरा हृदय कब होगा ॥९५॥

अकस्मादुन्मीलत्तरुणकरुणेनैवमनसा त्वया व्यामोहन्तं द्रवितहृदयैः किं विलपितैः ।
प्रसादायोद्युक्ते भवति मम दोषैः किममितै रनुद्युक्ते किंवा मम गुणगणैर्हा रघुपते॥९६॥

अकस्मात् प्रकट हुई नवीन तरुण करुणा से लहराता हुआ मेरा मन द्रवीभूत होकर करुणापूर्ण गद्गद् कण्ठ से आपको प्रसन्न करने के लिये धैर्य त्याग कर नाना प्रकार का विलाप करना है तो उस मेरे पूर्व के दोषपूर्ण आचरण से ही क्या ? अथवा महान् धैर्य धारण कर सब कुछ सहकर कुछ भी न बोलने से ही क्या ? अर्थात् हे श्रीरघुनाथजी ! आपकी प्रसन्नता न हुई तो रोना और चुपचाप सहन करना सब कुछ व्यर्थ ही चला जाता है ॥९६॥

त्वमेवैकोपायो दशरथमुखाम्बोजतरणो–धरण्यामेज्ञातस्तरणिरिवदुःखाब्धितरणः ।
दवाग्न्युग्रज्वालावलयितनिकुंजालयमृगीशिशोरन्या का वा गतिरभिनवाभ्राद्वनभुवि॥९७

श्रीदशरथजी के मुखकमल को विकसित करनेवाले दिवाकर प्रभो श्रीराम ! मेरे तो इस भूतल पर एक मात्र आप ही उपाय हैं ऐसो मैंने निश्चयपूर्वक जान लिया है । दुःखरूपी दरिया को तरने के लिये नौका जहाज के बिना दूसरा उपाय ही क्या हो सकता है ? वन में दावाग्नि से जलते हुए निकुञ्ज में फँसे हुए मृगी के बच्चे को भागकर वचने के लिये फिर बन को छोडकर दूसरी गति ही क्या हो सकती है ? ॥९७॥

रतिर्मे नो धर्मे विरतिरपि नाधर्मकरणात् स्वभावोदुर्वारः खलु सकलसाधारणतया ।
नतेग्राह्यस्त्याज्यो न च चरपतिस्त्वां व्यसनिनं जनोऽयंतद्विश्वम्भर रघुपते तेस्म्यतिभरः॥९८

हे श्रीरघुपति ! मेरा धर्म में प्रेम नहीं है, इसलिये धर्मानुष्ठान परायण नहीं हूं । मेरी पाप से घृणा भी नहीं है इसलिये अधर्म का त्याग भी नहीं करता हूं । प्राणीमात्र अपने स्वभाव से लाचार है वैसे ही आपका भी समदर्शी स्वभाव है, न तो कोई आपको ग्रहण करने योग्य है तथा न कोई त्याग करने योग्य आपके लिये तो सब बराबर है क्योंकि आप सचराचर पति हैं अतएव सब आपके ही हैं इसोलिये हे विश्वम्भर ! मैं भी आपके विश्व में ही हूं और सर्वथा आपपर निर्भर हूं, तब आप मेरा त्याग कैसे कर सकते हैं ? कदापि नहीं कर सकते क्योंकि जैसे मैं अपने स्वभाव के वशीभूत हूं वैसे ही आप भी तो अपने स्वभाव के परवश हैं ॥९८॥

करे वामे चापं शरमपि दधानं तदितरे मणीमौलिं मस्ते कनकमयवासः कटितटे ॥
तडिच्छव्या देव्यां विकसदतसीसूनसदृशं दृशोर्मेऽग्रेरूपं तव रघुपते भातु सततम् ॥९९॥

वायें हाथ में धनुष तथा दाहिने हाथ में वाण धारण किये हों, मणिरत्न जटित मुकुट मस्तक पर सुशोभित हो, सोने की भाँति पीले पीताम्बर कमर में पहने हुए हों, विजली के समान छबि

शोभा सम्पन्न श्रीदेवीजी बायें भाग में विराजमान हो, अतसी (तीसी) के खिले हुए पुष्प के समान श्यामसुन्दर स्वरूप वाले आपके रमणीय स्वरूप के दर्शन हे श्रीरघुपते! हमको निरन्तर हुआ करे ॥९९॥

इति त्वत्प्रीत्यर्थं कपटनुति वाक्यं प्रलपितं यथार्थत्वेनेदं प्रसभमुरीकृत्यकृपया ।
अनन्तागस्तोमं त्रिविधमपि मे त्वं परिहरन् प्रसन्नश्रीसीतारमण भव गंगेव शरदि ॥१००॥

इस प्रकार आपको प्रसन्न करने के लिये भक्ति प्रेमी न होने पर भी बनावटी छलकपटभरी वाणी से विनय का नाटक करके मैंने अभी जो कुछ भी प्रलाप किया है उसको हे दयालो आप करुणा करके अपने शीलस्वभाव से यथार्थ ही मानकर कृपाकरके मुझे अवश्य कृतार्थ करेंगे। मेरे तन-मन-वचन से किये गये अनन्तानन्त अपराधों को क्षमाकरके हे श्रीसीतारमण प्रभो! आपतो शरदऋतु के गंगाजल की समान निर्मलभाववाले हैं अतः अपने स्वाभाविक स्वभाव का परिचय देते हुये मुझ पर प्रसन्न होने की कृपा करेंगे ॥१००॥

कोदण्डकाण्डपरिमण्डितबाहुदण्डं गारुत्मताद्दकमनीयसुनीलकान्तिम् ।
कोटीरहारकनकाम्बरराजमानं रूपं तवास्तु रघुवीर ! दृशोममाग्रे ॥१०१॥

कोदण्ड धनुष तथा बाण से भुजायें सुशोभित हो, गरुड के नेत्रके समान सुनील वर्ण की कमनीय काया हो, रत्नों के हार तथा पीताम्बर धारण किये हों ऐसा आपका दिव्य स्वरूप मेरी आँखों के सम्मुख सदा दर्शन देता रहे ॥१०१॥

शोणाधरैः कमलगन्धिविशालनेत्रं लोलालके कुटिलनीलमनोहरभ्रू ।
कुन्दप्रसूनरदनं मुखमुन्नसन्ते मञ्जुस्मितं रघुकुलेन्द्र ! कदानु द्रक्ष्ये ॥१०२॥

लाल लाल अरुणारे कमलपुष्प की सुगन्ध वाले सुन्दर ओठ शोभा दे रहे हों, बडे-बडे मनोहर नेत्र हों, भ्रमर जैसी काली-काली घुंघुराली अलके हों, टेढी मेढी मनोहर तिरछी भौंहे हो, कुन्दके पुष्प के समान स्वच्छ चमकते दाँत हों ऐसा सर्वश्रेष्ठ उन्नत मुखारविन्दवाले श्रीरघुकुलेन्द्र श्रीराघवजी के दर्शन तुझे कब होंगे? (प्रभो दया करके दर्शन दीजिये) ॥१०२॥

यः श्रीनिवास रघुनन्दनजानकीभ्याम् वाधूलगोत्र उद्भूत प्रणिधाय तेन ।
शेषार्य पादकमले हृदि राघवेण श्रीशेर्पिता शिखरिणीमणिमालिकेयम् ॥१०३॥

इति श्रीकाञ्चीपुरी परिसर वास्तव्येन राघवाचार्येण कृता शिखरिणीमणिरत्नमाला समाप्ता शुभम् सं. १९६६ मिति मार्गशीर्ष कृष्ण ४ बुधवार। श्रीरामसीताराम। जयराम जय जय राम। श्री राम सीताराम राम। जय राम जय जय राम राम। श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु। श्रीसीतारामौ बिजयेतेतराम्। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। मु० अयोध्याजी सन्तनिवास माहेश्वरी बाबरी।

यह "शिखरिणीमणि मालिका" व्याख्या प्रेमप्रवीण। पूर्ण हुई गुरुदेव कृपा अहैतुकी कीन।
'प्रेमोमृतरसवर्षिणी' टीका सन्त सुजान। पढे सुने समुझाई के पावै मोद महान॥
बुद्धि ज्ञान बल हीन मैं, सब विधि स्वास्थ्य विहीन। नेत्रज्योति से क्षीण पै, रामप्रेमरस पीन।
माघशुक्ल नवमी तिथी मंगल मंगलवार। दो हजार व्यालीस में पूर्ण हुई सुखसार॥
"प्रेमनिधि" प्रभुचरण में विनवत वारंवार। अर्पित है करुणानिधी करि हैं यह स्वीकार॥
भूलचूक छमि हैं सदा, सज्जन सन्त सुजान। आशिष दें करता रहूं, सदा राम गुणगान॥

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु